Vol. 10
Apr. - Jun.

No. 2(II)
2018

ISSN 0975 - 0142
UGC Approved Journal

JOURNAL FOR SOCIAL DEVELOPMENT

A Quarterly of ISDR

PEER REVIEWED JOURNAL FOR SOCIAL AND BEHAVIOURAL SCIENCES

Institute for Social Development and Research
Gari Hotwar, Ranchi - 835217 (Jharkhand)

12. Loneliness and Coping of Empty Nest Parents — 81
-Sangita Mukherjee
Research Scholar, Dept. of Psychology, Ranchi University, Ranchi, Jharkhand

13. स्वयं सहायता समूह और महिला सशक्तिकरण — 89
-डॉ. लाल राजीव रंजन नाथ शाहदेव
पीएच.डी. (कार्मिक), राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

14. सूचना का अधिकार, जनचेतना एवं जन जागरण — 101
-डॉ. जनार्दन कुमार राम
अनुबंध सहायक प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, के.डी. बी. कॉलेज (राँची विश्वविद्यालय), बेड़ो, राँची, झारखण्ड

15. भारतीय समाज में जाति गतिशीलता एवं शिक्षा : अन्तःसम्बन्धों की एक समझ — 107
प्रदीप कुमार साहु
सहायक शिक्षक, राजकीय मध्य विद्यालय, कुम्हार, चौपारण, हजारीबाग, झारखंड

16. झारखण्ड में प्रचलित जनजातीय वाद्ययंत्र — 117
-मनीषा कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड

17. मोदी सरकार की विदेश नीति और चीन : डोकलाम के विशेष संदर्भ में — 122
-डॉ. संगीता कुमारी
सहायक प्रोफेसर (अनुबंध), राजनीतिशास्त्र विभाग, मांडर कॉलेज (राँची विश्वविद्यालय) मांडर, राँची, झारखंड

18. हजारीबाग के बिरहोर जनजातियों में पुनर्वास व सांस्कृतिक -विस्थापन — 127
-शैलेन्द्र कुमार
सहायक प्राध्यापक (अनुबंध), मानवशास्त्र विभाग, बी. एन. जालान महाविद्यालय सिसई, गुमला, झारखंड

19. पंचवर्षीय योजनाओं में महिलाओं का विकास — 135
-डॉ. लाल राजीव रंजन नाथ शाहदेव
पीएच.डी. (कार्मिक), राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखण्ड

20. कोसी बेसिन में जल संसाधन का उपयोग एवं प्रबंधन का भौगोलिक अध्ययन — 144
-प्रीति कुमारी
शोध छात्र, भूगोल विभाग, भू. ना. मंडल विश्वविद्यालय, मधेपुरा, बिहार

ISSN 0975-0142, Peer Reviewed Journal, JSD, Vol. 19(2) II, 2018, ISDR, Ranchi.

झारखण्ड में प्रचलित जनजातीय वाद्ययंत्र

मनीषा कुमारी
शोधार्थी, इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड

किसी भी क्षेत्र की संस्कृति की पहचान का मूल स्रोत होता है - वहाँ का लोकजीवन उसके अतीत और उद्गम की खोज में वे प्रतीक, परम्पराएँ और प्रक्रियाएँ सहायक हो सकती हैं, जो लोकजीवन की उस धारा को आज तक गति प्रदान करती आ रही है। सदियों से झारखण्ड के पठारों, जंगलों एवं पहाड़ियों में भी जनजातियाँ रहती आई हैं। इस दुर्गम जंगलों तथा पहाड़ियों के क्षेत्र में बाह्य जनसंख्या का आकर्षण भी नहीं था और न संपर्क की सुविधाएँ थी। यहाँ तटस्थ एवं एकाकी सहअस्तित्व में जनजातीय समाज और संस्कृति फलती-फूलती रही, बाह्य जनसंख्या से इनका संपर्क नगण्य रहा। झारखण्ड का जनजातीय समाज भारतीय सभ्यता और संस्कृति की एक अमूल्य धरोहर है। झारखण्ड के जनजातीय संस्कृति में हिन्दुओं तथा अन्य बाह्य संस्कृतियों की भी झलक मिलती है।[1]

झारखण्ड का जनजातीय लोक जीवन नृत्य, गीत और संगीत से परिपूर्ण है। नृत्य, गीत और संगीत जनजातीय जीवन की सामूहिक यात्रा के अभिन्न हैं। इनसे ही लोक जीवन की अभिव्यक्ति मिलती है। ऐतिहासिक स्रोतों में भी इनके प्रमाण मिलते हैं।[2]

झारखण्ड में वाद्ययंत्रों की अपनी महत्वपूर्ण उपयोगिता है। यहाँ प्रारंभ से ही अनेक प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रचलन रहा है क्योंकि यहाँ के आदिवासियों ने जंगलों के मध्य गाँव बसाए, जिससे उन्हें हिंसक पशुओं का भय बना रहता था। इन्हीं हिंसक पशुओं से मुक्ति पाने के लिए तीव्र ध्वनि उत्पन्न करने वाले बाजे बनाए गए। इन वाद्ययंत्रों मुख्यतः नगाड़ा से पशु भयभीत होने लगे क्योंकि इसकी आवाज बहुत तीव्र होती थी। फिर इसी तरह ढाँक, ढोलक, करह, चौड़, चौड़ी, रबाबा, मेंदर, नरसिंघा, टमक आदि बनने लगे। रात्रि में जंगली पशुओं से स्वयं को बचाने के लिए इन वाद्ययंत्रों का प्रयोग यहाँ के लोगों के द्वारा होने लगा।[3]

झारखण्ड के वाद्ययंत्रों को मुख्यतः तीन श्रेणियों में बाँटा गया है :-

1. तंतु वाद्य – ये ऐसे वाद्ययंत्र है जिनमें रेशम की डोरी, ताँत, लोहे, ताँबे या पीतल की धातु के तार बँधे रहते है, जैसे – टोहिला, केंदरा, भुआङ, ओगो यंत्र, एकतारा।[4]
2. सुखर या सुषिर वाद्य – ये फूँक कर बजाए जाते है। इससे स्वर पूरक ध्वनि तथा कुछ से संगीत निकलते है, जैसे- बाँसुरी, मुरली, मोहन बाँसी, शंख आदि।[5]
3. घन या वितत – पीटकर, रगड़ कर, हिला कर बजाए जाने वाले वाद्ययंत्रों को वितत वाद्ययंत्र कहा जाता है। इस प्रकार के वाद्ययंत्रों में मुख्यतः ढोलकी, ढमक, करह, डमरू, करताल, झाँझ, घंट, घंटी, घुँघरू आदि हैं।[6]

झारखण्ड की प्रमुख जनजातीय वाद्ययंत्र निम्न है –

1. टोहिला – यह कोमल ध्वनि का वाद्य है। इसे चार फीट के खोखले बाँस की लाठी पर बनाया जाता है। इसके मोटे भाग पर सूखे कद्दू के खोल के आधे भाग को काटकर कस दिया जाता है। लाठी पर रेशम के मोटे धागे से कद्दू के खोल के अंदर एक अँगूठी देकर कसा रहता है। लाठी के दूसरे भाग में घोड़े या किसी पशु-पक्षी की आकृति बनाकर जड़ दिया जाता है। इसे शांत वातावरण में बजाया जाता है। यह पुरुष प्रतीक वाद्ययंत्र है और इसे पुरुष बजाते है।[7]
2. केंदरा – यह भी धीमी गति से बजने वाले वाद्य हैं। समूह या भीड़ में प्रायः इसका उपयोग सीमित होता है। इसकी बनावट टोहिला की तरह होती है। एक चार फीट मोटी खोखली लाठी के दोनों छोर पर गोल-गोल कद्दू के सूखे खोल को उपयुक्त विधि से ही बाँध दिया जाता है। इसमें लाठी के दोनों छोर पर खूँटी लगी रहती है, जिस पर तार बाँधे जाते हैं। यह स्त्री का प्रतीक वाद्य माना जाता है।[8]
3. भुआङ – यह भी टोहिला की तरह बजने वाला वाद्ययंत्र है। एक खोखले तीन-चार फीट के बाँस के लाठी के दोनों छोर पर 'एल' आकृति की खूँटी जड़ दी जाती है। दोनों खूँटियों में ऊँचे भाग पर जंगली लतर से बनी रस्सी

बाँध दी जाती है। इससे गीत नहीं बजाया जाता, मात्र धुन निकलती है। यह संथालों का प्रिय वाद्ययंत्र है। शिकार के समय इस वाद्ययंत्र का प्रयोग अधिक किया जाता है। इसे भी पुरुष बजाते है।[9]

4. बनम – इसका प्रयोग मुंडा, संथाल, हो, खड़िया आदि समाज में होता है। यह लकड़ी का मुदगरनुमा बना होता है। एक भाग पतला और दूसरा भाग मोटा होता है। यह धीमी गति से बजने वाला मधुर वाद्ययंत्र है। इसकी गति ध्वनि सुनने के लिए बीच-बीच में तीव्र वाद्ययंत्र को रोक दिया जाता है।[10]

5. सोहखो या रेंगड़ा – यह भी संथालों का विशेष वाद्ययंत्र है। इसका प्रयोग मात्र स्वर या ताल देने के लिए किया जाता है। इसमें अँगुलियाँ रगड़ खाती हुई ध्वनि निकालती है।[11]

6. मोहन बाँसी – यह बाँसुरी की तरह का एक वाद्ययंत्र है। इसमें बाँसुरी की तरह छेद होता है। इसे खड़े में ऊपर-नीचे रखकर फूँक मार कर बाँसुरी की तरह बजाया जाता है।[12]

7. तिरियो – यह बाँसुरी जाति का वाद्ययंत्र है। इसमें बाँसुरी के दो भाग होते हैं। प्रत्येक भाग में चार छिद्र होते हैं। इससे बाँसुरी की तरह आवाज एक साथ आती है। यह वाद्ययंत्र उराँव, मुंडा, खड़िया, सदानों में प्रयोग किया जाता है।[13]

8. भेड़र – यह ताँबे की पतली एक इंच मोटी लगभग 5–7 फीट लम्बी पाइप होती है। फूँकने के भाग में छह इंच का लगभग एक और पाइप डाला जाता है। दूसरे छोर पर शहनाई की तरह चोंगे होते हैं। बाएँ हाथ से छड़ी को कमर में टिका कर भेड़र को दूसरे हाथ में फूँकने के स्थान पर दो अँगुलियों से होंठ पर रखकर विशेष प्रकार से फूँका जाता है। महुआ, पैका, विवाह आदि के नृत्य के समय इसका प्रयोग विशेष रूप से होता है। यह मान्यता है कि इसकी ध्वनि से विघ्न-बाधा, भूत-प्रेत दूर भाग जाते हैं।[14]

9. नगाड़ा – यह झारखण्ड का प्रथम वाद्ययंत्र माना जाता है और शुभ कार्य, युद्ध, शिकार, नृत्य, मुनादी पीटने, अखड़ा में बैठक बुलाने आदि में इसका उपयोग होता है। इसके प्रायः तीन प्रकार है – वृहद नगाड़ा, मध्यम नगाड़ा

तथा छोटा नगाड़ा। इन्हें संताली, हो, खोरठा आदि जनजातीय समाज में प्रयुक्त किया जाता है।

10. ढाँक – यह झारखण्ड का दूसरा तीव्र घन वाद्ययंत्र है। यह बहुत बड़ी मोटी लम्बी लकड़ी के खोल से बनता है। इसका वजन भी बहुत अधिक होता है। भारी होने के कारण इसे गले में टाँगकर तथा जमीन पर रखकर भी बजाया जाता है। दोनों ओर के चमड़ों को चमड़ों की रस्सी से ताना जाता है जिस पर पीतल या लोहे के रिंग होते हैं जिसे बजाने के समय खींच कर टाइट किया जाता है।

11. मांदर – मांदर झारखण्ड का सबसे लोकप्रिय, मधुर एवं घर-घर रखने वाला राज वाद्ययंत्र है। यह मिट्टी के खोल के अतिरिक्त लकड़ी या पीतल का बनने लगा है। इसमें हनुमान बंदर के चमड़े का प्रयोग मढ़ने के लिए होता है। परंतु आजकल बकरी के चमड़े का उपयोग होने लगा। झारखण्ड में सदान, खड़िया, उराँव, खोरठा, कुरमाली, संताली, हो या मुंडा आदि के मांदर के आकार-प्रकार अलग-अलग होते हैं।

12. चाँवर – यह नीलगाय की पूँछ के निचले झब्बेदार बालों का गुच्छा होता है। पकड़ने के भाग को छोड़कर लंबे बालों के गुच्छे का उपयोग संगीत संकेत के रूप में किया जाता है। इसका संचालक वादकों, नृत्यों एवं गायकों के समक्ष लय-ताल के अनुरूप चांवर डिलाकर संगीत का निर्देश देता है। यह वाद्ययंत्र तो नहीं लेकिन उन्हें निर्देश देने के काम आता है।

इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के झारखण्डी वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता था। इनके उपयोग अब प्रायः समाप्त हो गए हैं। इन वाद्ययंत्रों की सबसे महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनका निर्माण प्राकृतिक संसाधनों से होता है। इसी में अपनी रूचि तथा ज्ञान के अनुरूप अलग-अलग वाद्ययंत्रों का निर्माण एवं उपयोग किया जाता रहा है। इन्हीं आदिम झारखण्डी वाद्ययंत्रों के आधुनिकीकरण तथा संस्कारित प्रचार-प्रसार से शास्त्रीय वाद्ययंत्रों का निर्माण संभव हो सका। ये सभी वाद्ययंत्र मनुष्यों को आनंदित करने वाले यंत्र हैं।

संदर्भ

1. डी. रॉबिन त्रिभुवन और प्रीति आर. रॉबिन, *ट्राइबल टोन ऑफ इंडिया*, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1919.
2. गोपाल भार्गव (सं) : *एनसाइक्लोपीडिया ऑफ आर्ट एण्ड कल्चर इन इंडिया (बिहार)*, ईशा बुक्स, दिल्ली, 2008.
3. रणेन्द्र (सं.): *झारखण्ड एनसाइक्लोपीडिया : मांदर की धमक और घुंघरुओं की खुनखुन*, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, 2008.
4. गया पाण्डेय : *भारतीय जनजातीय संस्कृति*, कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007.
5. गुरमीत सिंह मनकान : *उत्तर भारतीय संगीत*, नवभारत पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006.
6. बी. वीरोत्तम: *झारखण्ड : इतिहास एवं संस्कृति*, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना, 2006.
7. हेमंत : *झारखण्ड*, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, 2008.
8. सुनील कुमार सिंह : *झारखण्ड परिदृश्य*, क्राउन पब्लिकेशन्स, राँची, 2014.
9. श्याम कुमार : *झारखण्ड एक विस्तृत अध्ययन*, सफल प्रकाशन, राँची, 2004.
10. राम कुमार तिवारी : *झारखण्ड की रूपरेखा*, शिवांगन पब्लिकेशन, राँची, 2003.
11. रमेश कुमार वर्मा : *झारखण्ड का जनजातीय समाज*, सुबोध ग्रंथमाला, राँची, 2009.
12. एन.एस. पांडेय : *द हिस्टोरिकल ज्योग्राफी एण्ड टोपोग्राफी ऑफ बिहार*, पटना, 1963.
13. सच्चिदानन्द : *कल्चर चेंज इन ट्राइबल बिहार – मुण्डा एण्ड उराँव*, बुकलैंड, कलकत्ता, 1964.
14. एस.सी. राय : *द उराँव ऑफ छोटानागपुर*, ब्रह्म मिशन प्रेस, कलकत्ता, 1915.

Vol. 11
Apr. - Jun.

No. 2
2019

ISSN 0975 - 0142

JOURNAL FOR SOCIAL DEVELOPMENT

A Quarterly of ISDR

PEER REVIEWED JOURNAL FOR SOCIAL AND BEHAVIOURAL SCIENCES

Institute for Social Development and Research
Gari Hotwar, Ranchi - 835217 (Jharkhand)

8. India – China Relation: From the perspective of Indian Rupee and Chinese Yuan
-Dr. Prity Sharma
Assistant Professor, Asian Law College, Asian Education Group, Noida, Uttar Pradesh 58

9. Development of Human Resources
-Nahid Jabeen
Research Scholar, Nalanda Open University, Patna, Bihar 64

10. भारतीय राष्ट्रवाद का उदय एवं दार्शनिक आधार
-नीना कुमारी
शोधार्थी, राजनीतिविज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड 69
-डॉ. शैलेन्द्र त्रिपाठी
सहायक प्रोफेसर, स्नातकोत्तर राजनीतिविज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड

11. समाजवाद का सफर: भारतीय समाजवादियों के संदर्भ में
-नीता पूर्णिमा तिर्की
शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड 78
सम्प्रति: *सहायक प्राध्यापिका, संत कोलंबा कॉलेज (नीलाम्बर-पीताम्बर विश्वविद्यालय, मेदिनीनगर), गढ़वा, लातेहार, झारखण्ड*

12. महिलाओं के दैनिक जीवन में योग का महत्व
-सतीश अनिल कुमार
प्रवक्ता, शिव सागर सिंह विद्या मंदिर इण्टर कॉलेज, सीह, रायबरेली, उत्तर प्रदेश 83

13. कृषि विज्ञान केन्द्र रायबरेली का मानव संसाधन विकास में योगदान का विश्लेषणात्मक अध्ययन
-सुनील दत्त
शोध छात्र, भूगोल विभाग, छत्रपति शाहूजी महाराज विश्वविद्यालय, कानपुर, उत्तरप्रदेश 94

14. राम प्रसाद का राष्ट्रीय आंदोलन में योगदान
-उज्ज्वल कुमार भास्कर
शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, तिलका माँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर, बिहार 104

15. झारखण्ड का प्रमुख वाद्ययंत्र: मांदर एवं ढोल
-मनीषा कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोत्तर संगीत विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड 112

ISSN 0974-0147, Peer Reviewed Journal, JSD, Vol. 11 (7), 2019, ISDR, Ranchi.

झारखण्ड का प्रमुख वाद्ययंत्र : मांदर एवं ढोल

मनीषा कुमारी
शोधार्थी, स्नातकोत्तर इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, झारखंड

प्रारंभिक काल से संगीत में वाद्यों का विशेष महत्व रहा है। अजन्ता, एलोरा और एलिफेन्टा की चित्रकारी व मोहनजोदड़ो के भग्नावशेष में तथा वेद, उपनिषद् आदि ग्रंथों में विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग हुआ है। भगवान शंकर का प्रिय वाद्ययंत्र डमरू और भगवती सरस्वती का प्रिय वाद्य वीणा मानी गयी है। इनसे वाद्ययंत्रों की प्राचीनता का पता चलता है। भारतीय वाद्ययंत्रों को चार प्रमुख भागों में विभाजित किया जा सकता है- तत्, सुषिर, अवनद्ध तथा घन। यह विभाजन 'संगीत-रत्नाकर' पर आधारित है।

> तत् सुषिर अवनद्ध एवं घन।
> वाद्यानां ततं वाद्यं सुषिरमतम्।
> चर्मावनद्धवक्त्रमवनद्धं तु वाद्यते।
> घनोमूर्तिः साऽभिघाताद्वाद्यो यत्र तद्घनम्।[1]

तत् वाद्य – तत् वाद्य वे है जिनमें तारों द्वारा स्वरों की उत्पत्ति होती है। वाद्य में लगे हुए तारों पर जब प्रहार किया जाता है, तब उसके तार आन्दोलित होते हैं, जिससे ध्वनि निकलती है। तत् वाद्य को दो भागों में बाँटा जा सकता है- तत् और वितत्।

तत् वाद्य – तत् वाद्य वे हैं जिनके तारों पर अँगुलियों एवं मिजराब द्वारा प्रहार किया जाता है, जैसे- तानपूरा, वीणा, सितार, सरोद आदि। वीणा को तत् वाद्य की जननी मानी जाती है।

वितत् वाद्य –वितत् वाद्य वे हैं, जो गज अथवा कमानी द्वारा बजाये जाते हैं, जैसे- सारंगी, इसराज, बेला आदि।

सुषिर वाद्य – जिन वाद्यों में वायु के प्रवेश से स्वरों की उत्पत्ति होती है, वो सुषिर वाद्य कहलाते हैं। इन वाद्यों में वायु मुँह के द्वारा पहुँचायी जाती है, जैसे- बाँसुरी, शहनाई, क्लेरोनट बीन आदि। धौंकनी द्वारा भी इन वाद्यों में वायु प्रवेश कराई जाती है, जैसे- हारमोनियम।

अवनद्ध वाद्य – जिन वाद्यों में खिंचे हुए चमड़े या कपड़े पर प्रहार करने से ध्वनि उपलब्ध होती है, वे अवनद्ध वाद्य कहलाते हैं। इन्हें ताल-वाद्य भी कहा जाता है। अवनद्ध वाद्यों में मृदंग, तबला, पखावज, नगाड़ा, डमरू, ढोलक आदि आते हैं।[2]

इसी प्रकार झारखण्ड के वाद्ययंत्रों को भी उपर्युक्त चार भागों में विभाजित किया गया है। झारखण्ड की संस्कृति में प्रचलित सबसे महत्वपूर्ण वाद्ययंत्रों में से मांदर और ढोल है जिनका प्रयोग आदिकाल से ही विभिन्न नामों के रूप में होता आ रहा है।

मांदर

मांदर का शाब्दिक अर्थ है –मृदंग का एक भेद और मृदंग ढोलकों की तरह एक बाजा मुरज होता है। इस प्रकार मांदर, मृदंग, मुरज एक ही प्रकार के वाद्य हैं। मांदर की प्राचीनता बहुत पुरानी है। नटराज शंकर का डमरू सबसे प्राचीन अवनद्ध वाद्य है, उसी के आधार पर मृदंग की उत्पत्ति हुई। मृदंग की प्राचीनता का प्रमाण ऋग्वेद से मिलता है। इसमें वीणा, मृदंग, वंशी और डमरू का वर्णन आया है। पुरातन काल में मृदंग को पुष्कर वाद्यों की श्रेणी में प्रथम वाद्य कहा जाता था जिसका वर्णन भरत-मत के ग्रंथों में मिलता है। पुष्कर वाद्य देवताओं को बहुत प्रिय था। इसको ताल के साथ-साथ उनका नृत्य हुआ करता था। इसका प्रमाण अनेक प्राचीन मूर्तियों तथा चित्रों द्वारा मिलता है।

पखावज, मुरज और मर्दल, ये नाम भी मृदंग के ही हैं। इस प्रकार के विभिन्न नाम और उनकी आकृतियों का वर्णन ग्रंथों में मिलता है। मृदंग का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा जिसे वहाँ 'मृदंगम्' कहा जाता है। कुछ समय बाद उत्तर भारत के संगीतज्ञों ने 'मृदंग' से मिलता-जुलता वाद्य बनाकर उसका नाम 'पखावज' (पक्ष वाद्य) रख दिया। पखावज पर उनके कठिन तालों का प्रयोग

हुआ करता था। लेकिन जब से तबले का आविष्कार हुआ, मृदंग का प्रचार उत्तर भारत में कम हो गया है।[7]

ऐतिहासिक दृष्टि से मृदंग, मांदर, मुरज आदि का उल्लेख वैदिक साहित्य में प्राप्त नहीं होता। फिर भी जिस प्रकार मांदर, मृदंग आदि का नाम वाल्मीकि रामायण में प्रयुक्त हुआ है उससे यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि रामायणकाल से अनेक वर्षों पूर्व इन वाद्यों का प्रचार हो चुका था। रामायण के अध्ययन से यह पता चलता है कि उस समय अवनद्ध वाद्यों में मांदर, मृदंग का सर्वाधिक प्रचार था।

मांदर का उल्लेख अनेक प्राचीन साहित्य ग्रंथों में मृदंग के रूप में हुआ है। महाभारत में भी मृदंग के नाम उपलब्ध है। कालिदास के साहित्य में मर्दल, मुरज तथा मृदंग इन तीनों का वर्णन विभिन्न जगहों पर हुआ है। महर्षि भरत ने अपनी पुस्तक नाट्यशास्त्र में मृदंग का उल्लेख किया है–

> निगदन्ति मृदङ्गं तं मर्दलं मुरजस्तथा।
> प्रोक्तं मृदङ्ग शब्देन मुनिना पुष्कर त्रयम्।।[8]

अभिनव गुप्त ने भी मुरज को मृदंग का पर्याय बताया है। महर्षि भरत ने 34वें अध्याय में लिखा है– सुख प्रदान करने वाली मांगलिक होने के कारण इसे मृदंग कहते हैं। मुलायम मिट्टी से बनी हुई होने के कारण इसे मुरज कहते हैं। शारंगदेव ने भी इसे मृदंग का पर्याय माना है।

वैदिक संस्कृत ग्रंथों के पूर्व प्राकृत भाषा प्रचलित थी जिसे संस्कारित कर संस्कृति की कठिनाईयों ने प्राकृत की ओर भाषा का विकास हुआ। नागपुरी भी प्राकृत के ही एक क्षेत्रीय रूप झारखण्डी प्राकृत (अर्द्ध मागधी) में जो मांदर, मांदल आया है, इसी लोक भाषा के शब्द बाद में मृदंग बन गए। डॉ. लालमणि मिश्र का कहना है कि मृदंग का यह नाम प्राकृत भाषा की देन है।

> "मांदर किनलों दादा, जनी किनल नियर लागेला।
> मांदर फूटलो दादा, जनी मोरल तरी लागेला।"[9]

अर्थात् मांदर खरीदने पर पत्नी खरीद लाने का सुख मिलता है, (कन्या मूल्य देने के कारण)। मांदर फूटने पर पत्नी के मर जाने जैसा दुःख होता है। इस

प्रकार इस गीत से यह पता चलता है कि झारखण्ड के जनजातीय समाज में मांदर बहुत महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र है। प्रायः हर समुदाय का मांदर अपने विशिष्ट स्वरूप में होता है। सबकी बनावट में अंतर भी दृष्टिगत होते है जिसके कारण झारखण्ड को संगीत के पक्ष से मांदर देश कहा जाता है। झारखण्डी संगीत-संसार में मांदर, नगाड़े, बांसुरी गीतों के प्राण कहे गए हैं। इनके बिना झारखण्डी संगीत का आनन्द अधूरा है। नागपुरी में एक पहेली कही जाती है-

काठ कर घोड़ा, लोहा कर सींग।
नाइर दे मृदंग, बाजे धातिंग तिंग।।

अर्थात् ढेकी। यहाँ ढेकी की "ढेकुर चा" की आवाज को मृदंग के धातिंग तिंग ध्वनि से बताया गया है और यह ध्वनि धातिंग तिंग यहाँ की ताल या ध्वनि है। इस तरह इससे मृदंग और मांदर की निकटता का पता चलता है। नागपुरी में मृदंग का प्रयोग न कर मांदर का उपयोग किया जाता है।[4]

मांदर पूरे झारखण्ड का सर्वप्रिय वाद्य है और इसकी ताल इसकी गूंज लोगों को दिवाना बना देती है। अखरा में मांदर को आह्वान ताल बजा कर किया जाता है। झारखण्ड में शायद ही ऐसा कोई घर हो, चाहे वो सदान का हो या आदिवासी का, जहाँ मांदर खूंटी पर टंगा न हो। मांदर अखरा की शान है। इसके बिना अखरा जागता नहीं। अखरा को जगाने के लिए मांदर की ताल को बजाया जाता है। मांदर का जादू अखरा में ही देखने को मिलती है जब मांदर वादक (मंदरिया) झूम-झूम कर मांदर बजाता है।

"जने जने मांदर बाजे। चलें हो तने तने जाय।
छउवा पुता भले डोंगा डोल।"

अर्थात् जहाँ-जहाँ मांदर बजता है चलो प्रिय वहाँ-वहाँ चलें। बच्चे भले ही डोंगा डोल हो जाएँ, हृदय डाँवाडोल न हो। इस प्रकार जब मांदर बजता है तो लोगों के तन-मन को झंकृत कर देता है।[5]

झारखण्ड का मांदर पूरब में मृदंग और पश्चिम में पखावज के रूप में परिवर्तित हो गया। पखावज भी मांदर के नजदीक का वाद्य यंत्र है। वर्गी घोष लिखित संगीत विशारद कहा है- पखावज, मुरज और मर्दल ये नाम भी मृदंग के

ही है। इसके अलावा मृदंग का विशेष प्रचार दक्षिण भारत में रहा। कुछ समय बाद उत्तर भारत के संगीतज्ञों ने मृदंग का मिलता-जुलता प्रकार बनाकर इसका नाम पखावज कर लिया। इस संबंध में कृष्ण दास के पद देखे जा सकते हैं "गिड़गिड़ि थितौं थितौं मन्दिलरा बाजै", इस तरह संगीत रत्नाकर में वर्णित मर्दल से ही मादल और मन्दिलरा शब्द बनें।

मांदर से मिलते-जुलते वाद्य हैं- मृदंग, मुरज, मर्दल, मंदिलरा, मादल। मांदर की उत्पत्ति के बारे में कहा जा सकता है कि झारखण्ड का मांदर तो आदिवासी सदान अर्थात् पुराने निवासियों का लोकप्रिय वाद्य रहा है। आगे चलकर विकसित सभ्यता आर्य समाज ने इस लोकवाद्य मांदर को उपर्युक्त रूपों में विकसित किया। मांदर की उत्पत्ति का इतिहास तो झारखण्ड में भी अज्ञात है। यह इतिहास के अज्ञात काल से बजता और लोगों को रिझाता आ रहा है।[8]

ऐसा कहा जाता है कि जहाँ आज मुड़मा मेला लगता है, इतिहास के किसी अज्ञात काल में मुड़मा इलाके में मुंडाओं का विस्तार था। बाद में उराँव वहाँ आए। दोनों नृत्य-संगीत-वाद्य के अनन्य प्रेमी थे। दोनों समूहों में एक शर्त पर सात दिन सात रात मुड़मा अखड़ा में जदरा का नाच-गान-बजान चलता रहा। दोनों में कोई नहीं हारा। अंत में निर्णायकों ने उराँवों को मांदर की कोमल, मधुर, मदिर ध्वनि के कारण विजय घोषित किया। शर्त के अनुसार पराजित समूह मुड़मा इलाका छोड़कर अन्यत्र चला जायेगा और विजेता इस इलाके में बस जाएगा। लेकिन उराँवों के निवेदन पर कुछ पहान मुंडा रह गए। आज भी इस इलाके के अनेक गाँवों का नाम मुंडारी भाषा का है।

यहाँ के ऐतिहासिक लोक गीतों में मांदर की महत्ता बताने के अनेक गीत हैं। एक तो शिशु के जन्म लेने पर मांदर बजाने की परंपरा है। मांदर बजाकर गाँव को सूचित किया जाता है कि गाँव में अखरा और मांदर का एक और कलाकार आ गया और वह अपना गान अभी से शुरू कर दिया है। बेटे के जन्म पर घुम-घुमकर मांदर बजाया जाता है। बेटी के जन्म लेने पर मांदर का श्रृंगार कर नचाया जाता है।

बेटी जन्म दियले गे आयो
घुमरी घुमरी मांदर बजाए रे

सपरी सपरी मांदर बजाए
बेटी जे जनमाले आयो
अखड़ा के सोहान करे रे।[9]

झारखण्ड में मांदर का इतिहास अज्ञात होते हुए भी रोचक है। मांदर का लोकवाद्य अब शिष्ट वाद्य बना तो इसके अनेक रूप हो गए। लेकिन इसकी उत्पत्ति के पीछे मांदर की बुनियाद ही है।

झारखण्ड की विभिन्न जाति समूह के गीत एवं नृत्य में बजाये जाने वाले मांदर

1. जशपुरिया मांदर – यह मांदर नागपुरी गीतों में उपयोग किया जाता है।
2. कुडुख अथवा गुमला मांदर – उराँव गीतों में गुमला मांदर बजाया जाता है, लेकिन कभी-कभी जशपुरिया मांदर के स्थान पर नागपुरी गीत में भी यह मांदर उपयोग में आता है।
3. संथाल मांदर – संथाल गीत का सर्वश्रेष्ठ मांदर होता है। संथाली मांदर में दूसरे गीतों का सामंजस्य नहीं होता है।
4. हो मांदर – हो गीतों में बजाये जाने वाले मांदर।
5. मुंडा (कुरमाली) मांदर – इसे कुरमाली और खोरठा गीतों में बजाया जाता है। इस मांदर का बोल गुमला मांदर के बोल से मिलता-जुलता है।
6. खड़िया मांदर – इसे खड़िया गीतों में बजाया जाता है। खड़िया मांदर नागपुरी अथवा जशपुरिया मांदर से थोड़ा-सा भिन्न है। दोनों के बोल समान रूप से मिलते-जुलते हैं।

ये मांदर विभिन्न जातियों में भिन्न-भिन्न आकार के हैं। सदानों का जशपुरिया मांदर लम्बा होता है। मोटाई भाग पर थोड़ा अंदर उभार होता है जिससे फोंते सटे होते हैं। वहीं छोटा खड़िया मांदर होता है जिसके उभार में फोंते सटे नहीं होते हैं। उराँव मांदर के मुंह भाग एक इंच लगभग अंदर धंसे होते हैं जबकि बाकि सभी मांदर में समतल पर ही चमड़े मढ़े होते हैं। मुंडाओं के मांदर उराँव मांदर से थोड़ा छोटा होता है और 'हो' मांदर इससे भी छोटा होता है। कुरमाली, पंचपरगनिया व खोरठा मांदर की लंबाई बहुत कम होती है लेकिन गोलाई बड़ी होती है। इन तीनों की आकृति भी लगभग समान होती है।[10]

ISSN 0975-8142, Peer Reviewed Journal, JSD, Vol. 11 (2), 2019, ISDR, Ranchi.

मांदर झारखण्ड का सर्वाधिक लोकप्रिय वाद्ययंत्र है। इसे लोग मनों का राजन मानते है। इसे राजवाद्य भी कहा जाता है। झारखण्ड की प्रायः सभी जातियों का अपना-अपना मांदर होता है। बस इसकी आकृति और आकार में विभिन्नता देखने को मिलती है। इसके निर्माण में प्रयोग की गई खोल मिट्टी, लकड़ी, लोहा या अल्युमिनियम के चादरों से निर्मित किया जाता है। प्रारंभ में इसके निर्माण में मिट्टी या लकड़ी का बना खोल का ही प्रयोग किया जाता था। मिट्टी से बने होने के कारण यह ढोलक से भी अधिक भारी होता था। ढोलक की तरह इसका खोल एक तरफ पतला तथा दूसरी ओर चौड़ा बनाया जाता है। इस खोल पर पतला चमड़ा मढ़ा जाता है। चमड़े में सबसे उपयुक्त हनुमान बंदर के चमड़े को माना जाता है। लेकिन अब इसकी अनुपलब्धता के कारण बकरी के चमड़े का प्रयोग किया जाने लगा है।

इस लेप के निर्माण में काली मिट्टी और पके हुए चावल (भात) की लाई का प्रयोग किया जाता है। इस लेप को चार से पाँच बार मांदर के दोनों तरफ लगाया जाता है जिससे इसे मजबूती मिल सके। तुंग भाग के प्रत्येक परत को पत्थर की सहायता से घिस कर चिकना किया जाता है।

इसके छोटे मुँह की तरफ जिसे चना या तुंग कहा जाता है; महीन बारीक एवं पतली और चिकनी लेप लगाया जाता है। मांदर के दूसरी तरफ चौड़े भाग पर जिसे ढिसना या गद कहा जाता है, मोटा और खुरदरा लेप लगाया जाता है।

मांदर के दोनों तरफ लगे चमड़े को अच्छी प्रकार से कसने के लिए फीता का प्रयोग किया जाता है। यह फीता भी चमड़ा का बना होता है। इस फीते को लगभग आधा से एक इंच की दूरी पर मोटी बाधी से खींचा जाता है। मांदर को सभी तरफ से फीते की सहायता से कसा जाता है। मोटी बाधी के नीचे दोनों छोरों पर गद्दा एवं ऊँचा उठाने के लिए आधा इंच मोटी रस्सी लगाई जाती है। बड़े मुँह की तरफ पुआल की रस्सी और छोटे मुँह की तरफ चमड़े की रस्सी का रिंग बनाकर इसे अच्छी प्रकार से गोलाई में लगाया जाता है। इसे टांगने के लिए चमड़ा से बना टांगना का प्रयोग किया जाता है। मांदर को आकर्षक एवं सुंदर दिखने के लिए रंगों की सहायता से रंगा भी जाता है।

मांदर के निर्माण में लगाए गए मिट्टी के खोल को बनाने के लिए कुम्हार जाति के लोग बहुत ही सावधानीपूर्वक बनाते हैं। यह इतना सीधा होता है कि कुम्हार इसे एक बार में नहीं बना सकते हैं। इसी बनाने के लिए सबसे पहले खोल के आधे भाग का निर्माण किया जाता है। कुम्हार मांदर के चौड़े भाग का लगभग एक से डेढ़ फीट की लंबाई में निर्मित करता है। वह इसे फिर धूप में सूखने के लिए छोड़ देता है। जब यह हल्का सूख जाता है तब इस पर बने हुए मांदर का ऊपरी हिस्सा अच्छी प्रकार से रख दिया जाता है। यह दोनों भाग अलग-अलग न दिखे इसके लिए वह गेरूआ गिली मिट्टी का प्रयोग कर बीच की दरार को भर देता है। अब इसे अच्छी प्रकार से सुखा दिया जाता है। इस मिट्टी का प्रयोग मांदर के आंतरिक भाग के लिए किया जाता है। इसके बाह्य भाग को पीतनी मिट्टी (चूना मिट्टी) से लेप लगाया जाता है।[11]

खोल

झारखण्डी लोक संगीत में सम्पे समय से प्रचलित और लगातार अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए रखनेवाला यदि कोई वाद्ययंत्र है, तो वह है- ढोल। अखड़ा हो या मेला, जतरा की रौनक, शादी का माहौल हो या सामाजिक उत्सव ढोल की थाप अवश्य सुनाई पड़ती है। प्राचीन काल से आज तक यह हमारे बीच मौजूद है।

ढोल का प्राचीन नाम पटह है। इसका उल्लेख सर्वप्रथम नाट्यशास्त्र में प्राप्त होता है। पुराने समय से ही अवनद्ध वाद्यों मृदंग के बाद यदि कोई वाद्य प्रचार में रहा है तो वह है पटह। किसी-किसी संगीत शास्त्री में मृदंग से अधिक विस्तारपूर्वक वर्णन पटह का किया गया है। पं. लालमणि मिश्र के अनुसार पटह शास्त्रीय एवं लोक दोनों ही संगीत शैलियों में प्रचलित रहा है। वाल्मीकि रामायण के अतिरिक्त सभी पौराणिक ग्रंथों तथा संस्कृत नाटकों में यत्र-तत्र पटह का नामोल्लेख मिलता है। मानसोल्लास, भरत भाष्य, संगीत रत्नाकर, संगीतोपनिषद, सारोद्धार इत्यादि में संगीत ग्रंथों में पटह का विस्तृत वर्णन मिलता है। इन ग्रंथों में पटह के दो भेद बताए गए हैं- मार्गी तथा देशी। उनके निर्माण विधि तथा वादन विधि का विस्तृत विवरण इन ग्रंथों में मिलता है।[12]

मार्गी पटह की तरह ही झारखण्ड के सिंहभूम, धनबाद, उड़ीसा के मयूरभंज, पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, बांकुड़ा, मेदिनीपुर इलाके में देखने को मिलती है। इस ढोल को नोसी ढोल कहते है। कहीं-कहीं तो इसे ढोपाली ढोल के नाम से जाना जाता है। देशी पटह का वर्णन भी इसी प्रकार का मिलता है लेकिन इसके प्रादेशिक भेद भी हो सकते हैं।

पटह के वादन विधि के वर्णन में सोलह अक्षर बताए गए हैं। इन्हीं में 'क' वर्ग के चार, ट वर्ग के पाँच, त वर्ग के पाँच तथा र, ध, ब अक्षर हैं।

क वर्ग - किर निर ता, किर किरता
खेरे ता खेर खेर ता
गोन ता, गोन ता, गोन ता
च वर्ग- झेंण, झेंन, झेंन
ट वर्ग - टेर टेरे टेर
टेंकर टेंकर टेंकर
त वर्ग - दा दा नेता तेर छेट ता
धिया धिया

संगीत परिजात के समय यानी सत्रहवीं शताब्दी तक आते-आते यह वाद्य पूरी तरह संगीत जगत में अपनी पैठ बना चुका था तथा इसका नवीन नामकरण ढोलक भी प्रसिद्ध हो गया। ढोल व ढोलक दोनों का आकार लगभग एक जैसा बेलनाकार है। लेकिन ढोल आकार में बड़ा होता है और ढोलक छोटी होती है। शायद यही भेद दिखाने के लिए बड़े वाद्य को ढोल और छोटी होने के कारण स्त्रीलिंग मानकर दूसरे वाद्य को ढोलक या ढोलकी कहा जाता है। कारण जो भी रहा हो लेकिन यह सत्य है कि जैसी लोकप्रियता व जिस तरह का प्रचार ढोलक का रहा है वैसा ढोलक का नहीं।

ढोल के प्रकार

झारखण्ड जैसे रसिक प्रदेश में स्थान विशेष अनेक प्रकार के ढोल देखने को मिलते हैं। इस प्रदेश के ऊबड़-खाबड़, ऊँच-नीच, पहाड़-टोंकरी में बसे जनजातीय एवं सदान समुदाय के ढोल में थोड़ा बहुत अन्तर पाया जाता है। साथ

ही खूँटी मरांगहादा जैसे पहाड़ के ऊपर बसे लोगों के ढोल और बहरागोड़ा जैसे समतल स्थानों में बसे लोगों के ढोल में थोड़ा-बहुत अंतर दिखाई पड़ता है। झारखण्ड में अनेक प्रकार की ढोल पाये जाते है -

1. डांड़ी ढोल - इस प्रकार की ढोल पूरे प्रदेश में पाये जाते है। प्रारंभिक काल में यहाँ बसे लोगों ने जब ढोल का आविष्कार किया तब इसका रूप यही रहा होगा। सीत लकड़ी का खोली जैसे-तैसे बनाकर छाते थे और बजाकर आनंद उठाते थे। ऐसे ही ढोल से अखरा गूँज उठता था। इस प्रकार के ढोल में कम्पन कम होता है। ऐसे ढोलकी आवाज 3 किमी. तक गूँजता रहता था। इसके आकार छोटे, बड़े, मध्यम तीनों प्रकार के होते हैं। जैसे-जैसे मनुष्य सभ्य होते गये। ढोल के स्वरूप में परिवर्तन होता गया। ढोल का बायां मुख का व्यास तथा दाहिना मुख का व्यास 9 इंच होता है।

2. कुंदरीफरीया ढोल- ऐसे ढोल राँची के पूर्वी क्षेत्र में बसे मुण्डा-कुर्मी जाति के लोगों के यहाँ पाये जाते है। डांड़ी ढोल से यह ढोल देखने में सुंदर लगता है। यहाँ के लोगों ने वन कुंदरी फल के आकार का ढोल का निर्माण किया। इसी कारण इसे कुंदरी फरिया ढोल कहा जाता है। इस ढोल का दाहिना मुख का व्यास 9 इंच, बायां मुख का व्यास 10 इंच होता है तथा बीच वाला भाग थोड़ा उभरा हुआ होता है। बीच वाला भाग 32''33''34''32'' गोलाई होता है। इसकी आवाज भी डांड़ी ढोल से मधुर होता है।

3. मैला ढोल- इस प्रकार के ढोल मुण्डा, कुर्मी, भूमिज, लोहार, घासी जाति के घरों में पाये जाते है। ऐसे ढोल के लिए बुण्डू, तमाड़, सिल्ली, पूर्वी सिंहभूम, पश्चिमी सिंहभूम इलाका प्रमुख है। कुंदरी फरिया ढोल के समकालीन ही इस प्रकार के ढोल का निर्माण हुआ है। वर्तमान समय में कुंदरीफरिया और मैला ढोल का उपयोग होता है।

यह ढोल कुंदरी फरिया ढोल के आकार से अलग होता है। इसकी लम्बाई 18 इंच से 23 इंच तक होता है। दाहिने मुख का व्यास 10 से 13 इंच तथा बायां मुख का व्यास 11 से 14 इंच तक का होता है। इसकी गोलाई 50 इंच तक होती है।

4- चौकी ढोल– यह छऊ नृत्य के समय बजने वाला ढोल है। मांदी पटह की तरह ही झारखण्ड के सिंहभूम धनबाद, उड़ीसा के मयूरभंज, पश्चिम बंगाल के पुरुलिया, बाँकुड़ा, मेदिनीपुर इलाके में देखने को मिलता है। कहीं-कहीं इसे ढोमाली ढोल के नाम से भी जाना जाता है। इस ढोल की लम्बाई 21 से 24 इंच तथा बायें मुख का व्यास इंच तथा दायें मुख का व्यास 8 इंच होता है, जिसे सबसे अच्छा ढोल माना गया है। बायें मुख में बांस की हंसुली के ऊपर फटे कपड़े लपेटकर इसके बायें भाग के चमड़े को दाहिने मुख के चमड़े से थोड़ा-सा भिन्न किया जाता है। इसके लिए गाय, हनुमान आदि का चमड़ा सर्वोत्तम माना गया है। इसके दाहिने मुख में $1\frac{1}{4}$ इंच लोहे के बने रिंगनुमा हंसुली में चमड़ा मढ़ा जाता है। मयूर भंज (उड़ीसा), सरायकेला, सिंहभूम (झारखण्ड) इलाकों में ढोल का बीच वाला भाग ज्यादा उभरा हुआ रहता है। इसका उभरा हुआ भाग 47''54''60'' तक देखा गया है। पूजा, ऋतु उत्सव आदि में इसे बजाया जाता है।[13]

झारखण्ड की कुरमाली समाज में ढोल की लम्बाई के लिए एक कहावत प्रचलित है– ''छातीक मापे ढाक, आदि मुड़ेक मापे ढोल''। यहाँ के लोग रस्सी द्वारा सिर को मापते हैं और उसी माप से ढोल की लम्बाई होती है। रस्सी द्वारा छाती मापने के बाद उसी माप से ढाँक की लम्बाई रखते हैं। ऐसे माप वाले ढोल, ढाँक सर्वोत्तम माना गया है। कभी-कभी लकड़ी के अभाव में ढोल की लम्बाई कम भी हो जाती है।

झारखण्ड में प्रायः ढोल को खोली मुण्डा, कुर्मी, लोहार, घासी जाति के लोग बनाते हैं। इसके निर्माण का अंतिम रूप घासी, महली, मोची ही देते हैं। ढोल बनाने का सबसे बड़ा केंद्र खूँटी अनुमंडल में चोड़ाहातु नामक ग्राम है। यहाँ के घासी जाति के लोग उन्नत ढोल बनाने के लिए प्रसिद्ध हैं।

इन लोगों का बनाया हुआ ढोल देश-विदेशों में भी प्रसिद्ध है। इसके अलावा झारखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों में भी ढोल का निर्माण होता है। प. बंगाल के पुरुलिया जिला के अंतर्गत झालदा, मानबाजार, बलरामपुर, बागमुंडी में अच्छे किस्म की ढोल बनाये जाते हैं। उड़ीसा के मयूरभंज जिला के अंतर्गत बहड़ा, कुड़ना,

ओरमांझी जैसे स्थानों में भी अच्छे ढोल बनाये जाते हैं। राँची जिला के कांके प्रखण्ड स्थित ग्राम बनाहोरा में भी उत्कृष्ट किस्म के ढोल निर्मित होते हैं।[4]

इस प्रकार झारखण्ड के लोकसंगीत में वाद्ययंत्रों की बहुत महत्वपूर्ण भूमिका है और इन वाद्ययंत्रों में मांदर की महत्ता सर्वश्रेष्ठ है। मांदर की उपस्थिति झारखण्ड के सभी जनजातीय घरों में मिलती है। मांदर रसिकों का प्रिय आभूषण है। इसकी सर्वश्रेष्ठता झारखण्ड के लोकगीतों और लोकनृत्यों में बहुत ही उत्साहित रूप में नजर आती है। मांदर के साथ-साथ ढोल भी झारखण्ड के लोगों के बीच बहुत लोकप्रिय है। ये सभी जनजातीय लोगों के घरों में देखने को मिलता है तथा सभी रीति-रिवाजों और त्योहारों में इसका प्रयोग किया जाता है।

संदर्भ

1. लालमणि मिश्र- भारतीय संगीत वाद्य, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, 2002, पृ. -42
2. मंगला कपूर- संगीत मांगल्य, सुमिरिमस बुक्स, वाराणसी, प्र. सं., 2013, पृ. -146, 147
3. ठाकुर जयदेव सिंह- भारतीय संगीत का इतिहास, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, प्र. सं., 2016, पृ. -249
4. गुरमीत सिंह नरूला- उत्तर भारतीय संगीत, महामाया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 2006, पृ. -188,189
5. गिरिधारी राम गौंझू 'गिरिराज'- झारखण्ड का लोकसंगीत, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2015, पृ. -100, 101
6. मधुसूदन नायक- नागपुरी लोकगीत और मांदर के ताल, झारखण्ड झरोखा, राँची, 2016, पृ. -22, 23
7. वाद्य वादन अंक- संगीत कार्यालय, हाथरस, 1975, पृ. -9
8. वही- संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस, प्र. सं., 2015, पृ. -93, 92
9. प्रो. डॉ. हरि उरांव- पखुरा, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषाएँ, कला, संस्कृति, पर्यटन एवं युवा कार्य विभाग, 2008, पृ. -50, 51
10. योगेश्वर हुंगरा- खड़िया, मुण्डा और उरांव संस्कृति का तुलनात्मक अध्ययन, झारखंड झरोखा, राँची, 2014, पृ. -83, 84
11. सं. रवींद्र सुधीर पाल- झारखंड इनसाइक्लोपीडिया: हुलगुलानों की प्रतिध्वनियाँ, वाणी प्रकाशन, 2008, खंड 4, पृ. -453

12. रश्मि गुप्ता- भारतीय संगीत एवं अनुवाद, अनुपम पब्लिशिंग हाउस, इलाहाबाद, 2013, पृ. -123, 124
13. संथली वाद्ययंत्रों की विविधता- आदिवासी साप्ताहिक, झारखंड सरकार, अंक 123, सितम्बर 2017, पृ. -3
14. स्रोत : झारखंड जनजातीय महोत्सव 2001, ट्राइबल कल्चरल सोसाइटी और आस्था, जमशेदपुर, -15, 16

। नामूलं लिख्यते किञ्चित् ।

ISSN : 0974-3065

इतिहास दर्पण

ITIHAS DARPAN

अंक 24 (2) (वर्ष प्रतिपदा)   Volume: XXIV (2) (Vijayadashami, CE2019)

कलियुगाब्द 5120, विक्रम संवत् 2075, ईसवी सन् 2018

Kali Yugabda 5120, Vikrama Samvat 2075, i.e. CE 2018

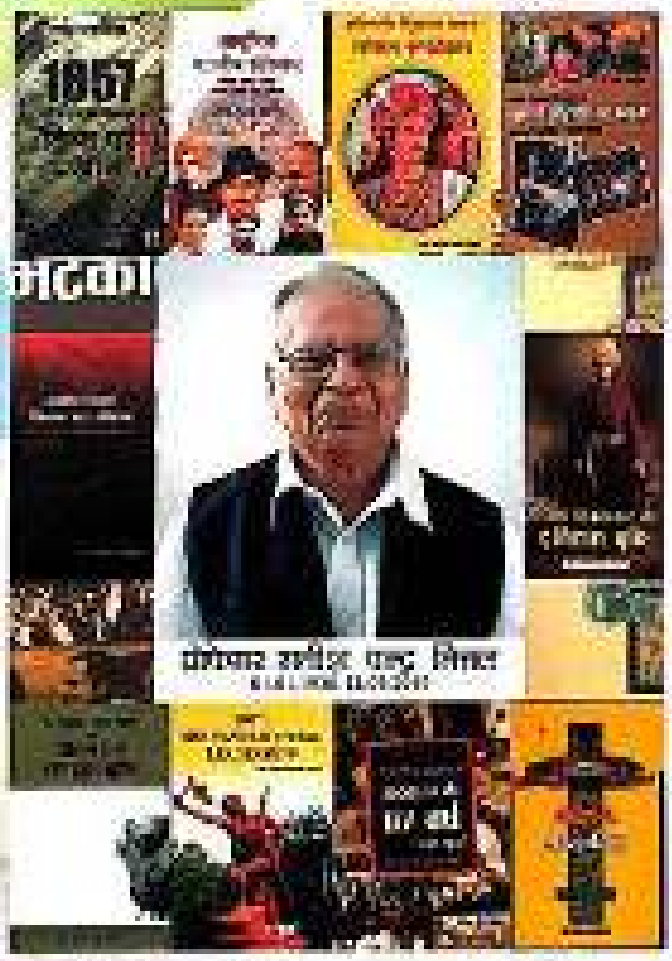

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना

बाबा साहेब आपटे स्मृति भवन, 'केशव-कुन्ज', झण्डेवाला, नयी दिल्ली-110 055

RESEARCH JOURNAL OF AKHILA BHĀRATĪYA ITIHĀSA SAṀKALANA YOJANĀ

Baba Sahib Apte Smriti Bhawan, 'Keshav Kunj', Jhandewalan, New Delhi-110 055

ITIHAS DARPAN

Volume XXIV (2) (Vijayādaśamī)
Kaliyugābda 5121, Vikrama Saṁvat 2076, i.e. CE 2019

Contents

1. इतिहास की अवधारणा — 1
सतीश चन्द्र मित्तल

2. Emerging Dimension of Harappan Archaeology — 7
T. P. Verma

3. धर्मशास्त्रीय विधि-निषेध की समस्या : समाधान एवं औचित्य — 14
लोकेन्द्र सिंह तोमर

4. दर्शन, धर्म एवं आचरण : एक वैदिक जीवन दृष्टि एवं शैली — 23
हरि शंकर प्रसाद

5. Perceiving Aims and Objectives of Marriage in Hindu Family : A Critical Reflection — 37
Swati Alpana

6. मथुरा कला में वैदिक एवं पौराणिक धर्म सम्बन्धी देवों की मूर्तियाँ : एक संक्षिप्त अध्ययन — 56
सुधीर शर्मा

7. मध्यप्रदेश ... की मूर्तिकला का ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक विवेचन — 71
आनन्द कुमार वर्मा

8. जैन एवं बौद्ध धर्म में पर्यावरणीय चिन्तन — 78
त्रिलोकी नाथ तिवारी

9. Religious Philosophy, Belief System and Moral Ethics Among the Tangsa and the Tutsa Tribes of Arunachal Pradesh — 83
Narayan Singh Rao

10. History of Buddhism in Ladakh — 93
Rajesh Sharma

11. Propagation of Buddhism in Kashmir- A Probe — 98
Arjun Singh

12. ठाकुर अमरचन्द बाफना : मेवाड़ का एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व — 105
ललितलाल बोहरा

13. भारतीय इतिहास की अविरल गौरवमयी परम्परा एवं इतिहास लेखन की विसंगतियाँ — 109
जय प्रकाश सिंह

14. Annie Besant's Service to the Cause of Indian Renaissance : A Biographical Sketch — 112
D.D. Pattanaik

15. Social Base of Indian Nationalism Champaran and After — 118
Himanshu Chaturvedi

16. ... एवं राजनीतिक ... — 123
मनोज कुमार तिवारी

17. स्वाधीनता आंदोलन में हिन्दी पत्रकारिता की भूमिका [illegible]
नीलम शर्मा
18. दीनदयाल उपाध्याय और एकात्म अर्थनीति [illegible]
चरण सिंह रावत
19. भक्तयोग : दर्शन एवं स्वरूप [illegible]
पद्मजा सिंह
20. महाराणा कुम्भा : एक ऐतिहासिक व्यक्तित्व [illegible]
संतोष कुमार मिश्र
21. Observations On The Historiography Of Jammu And Kashmir (1925-47) [illegible]
Sindhu Kapoor
22. क्रांतिवीर युवा इतिहासकार राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रतिवेदन [illegible]
छोटेलाल पाण्डेय, धर्म कुमार
23. आधुनिक भारत के निर्माण में सुभाष चन्द्र बोस का योगदान [illegible]
मनीषा कुमारी

आधुनिक भारत के निर्माण में सुभाष चन्द्र बोस का योगदान

(राष्ट्रीय संगोष्ठी प्रतिवेदन)

मनीषा कुमारी

विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली (झारखण्ड ईकाई), भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं कला, संस्कृति, पुरातत्व, खेलकूद एवं युवा कार्य मंत्रालय, झारखण्ड सरकार के संयुक्त तत्वावधान में आधुनिक भारत के निर्माण में सुभाष चन्द्र बोस का योगदान विषयक एक राष्ट्रीय संगोष्ठी दिनांक 15-16 जून, 2019 को बी.आई.टी., सिन्दरी, धनबाद, झारखण्ड प्रदेश में आयोजित किया गया।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना द्वारा प्रस्तावित युवा इतिहासकारों के राष्ट्रीय अधिवेशन के तहत यह आयोजन आहूत था। इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में देश के विभिन्न प्रांतों से युवा इतिहासकारों ने भाग लिया, विशेषकर पश्चिमी बंगाल, उत्तर बिहार, दक्षिण बिहार, झारखण्ड, उत्कल एवं छत्तीसगढ़ के 45 से कम आयु के महिला-पुरुष इतिहास के प्राध्यापक, शोधार्थी एवं इतिहास विषय में रुचि रखने वाले अन्यान्य विद्वानों ने भाग लिया।

झारखण्ड राज्य के सभी विश्वविद्यालयों के इतिहास विषयक प्राध्यापक, शोधार्थी तथा विद्यार्थियों ने इस आयोजन में भाग लेकर सफल बनाने में अहम भूमिका निभाई।

यह राष्ट्रीय संगोष्ठी कुल छः शैक्षणिक सत्रों में आहूत किया गया। इसके अतिरिक्त दो सत्र यानि एक उद्घाटन सत्र एवं दूसरा समापन सत्र भी था। कुल मिलाकर आठ सत्रों में संगोष्ठी को आयोजित किया गया था।

दिनांक 15 जून, 2019 को पूर्वाह्न 10:25 से 12:45 बजे तक उद्घाटन सत्र निर्धारित था। मंच आगमन एवं दीप प्रज्वलन के साथ अतिथियों को मंचासीन किया गया। उद्घाटन सत्र की शुरुआत [illegible] जिसे विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद के इतिहास चतुर्थ सेमेस्टर के छात्र श्री पंकज कुमार दुबे ने प्रस्तुत किया तथा संचालन डॉ. [illegible], इतिहास संकलन समिति, ओड़िशा द्वारा किया गया।

उद्घाटन समारोह की अध्यक्षता डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव, कुलपति, विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद ने किया। मुख्य वक्ता के रूप में मंच पर डॉ. सुष्मी दास, पूर्व सदस्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली उपस्थित थी। अतिथि के रूप में डॉ. बाल मुकुन्द पाण्डेय, संगठन सचिव, अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली, मुख्य अतिथि के रूप में श्री अमर कुमार बाउरी, माननीय मंत्री, कला, संस्कृति, पुरातत्व, खेलकूद एवं युवा कार्य मंत्रालय, झारखण्ड सरकार, उपस्थित थे। मंच पर विशिष्ट अतिथि लोकसभा धनबाद के माननीय सांसद श्री पशुपति नाथ सिंह, स्थानीय विधायक श्री फुलचन्द मंडल उपस्थित थे।

उद्घाटन सत्र में अतिथियों का स्वागत बी.आई.टी. सिन्दरी के निदेशक डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह ने किया। उन्होंने अपने स्वागत सम्बोधन में कहा कि प्रकृति की गोद में बसा बी.आई.टी., सिन्दरी देश का पुराना औद्योगिक शिक्षा का केन्द्र है। यहाँ से अध्ययन कर देश-दुनिया में अनेक इंजीनियर संस्था का नाम रौशन कर रहे हैं। आज देश के नामचीन इतिहासकार, विभिन्न विद्वान, शोधार्थी, विद्यार्थी हमारे प्रांगण में पधारकर समसामयिक विषय आधुनिक भारत के निर्माण में सुभाष चन्द्र बोस का योगदान पर व्याख्यान प्रस्तुत कर रहे हैं, उससे निश्चय ही देश में एक नयी राष्ट्रवादी इतिहास का प्रस्तुतन होगा। ऐसे आयोजन से आह्लादित हैं।

मंच पर उपस्थित झारखण्ड सरकार के माननीय मंत्री श्री अमर कुमार बाउरी जी, माननीय सांसद, धनबाद श्री पशुपति नाथ सिंह, स्थानीय विधायक श्री फुलचन्द मंडल जी [illegible] से स्वागत के उद्गार व्यक्त किये। डॉ. धर्मेन्द्र कुमार सिंह ने विशिष्ट रूप से मुख्य वक्ता, डॉ. सुष्मी दास के सम्बंध में कहा कि वे अपनी [illegible] नेताजी के सम्बंध में [illegible] द्वारा [illegible] में [illegible] उत्पन्न किया है, इनके अभिभाषण से हमको लाभ होगा। अंत में उन्होंने कुलपति डॉ. अंजनी कुमार श्रीवास्तव के संबंध में कहा कि उनकी अध्यक्षता में यह [illegible]

[illegible] रखा गया है इससे विश्वविद्यालय का मान बढ़ेगा।

डॉ. [illegible] ने अपने सम्बोधन में नेताजी की जीवनी पर एक [illegible] प्रस्तुत किया तथा नेताजी के [illegible] एवं उनके [illegible] पहलुओं पर विस्तार से बताया। मुख्य अतिथि श्री [illegible] ने कहा कि यह धनबाद की भूमि नेताजी के कर्म भूमि के रूप में [illegible] जाता है। नेताजी से जुड़े अनेक किस्से-कहानियाँ आज भी धनबाद, [illegible], [illegible] लोगों में [illegible] के बीच [illegible] है। [illegible] के [illegible] की आवश्यकता [illegible] है। [illegible] ने कार्यक्रम की सफलता तथा नेताजी पर एक अच्छी पुस्तक प्रकाशित करने हेतु इतिहास संकलन समिति, झारखण्ड से आग्रह किया ताकि लोग नेताजी के व्यक्तित्व से परिचित हो सकें।

अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय संगठन मंत्री डॉ. बालमुकुन्द पाण्डेय जी ने विस्तार से अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के उद्देश्य, इतिहास संकलन के विभिन्न आयाम, [illegible] अनुसंधान की आवश्यकता पर अपने विचार रखे। उन्होंने कहा कि इस वर्ष इतिहास संकलन योजना ने चार विषयों पर देश के सभी भागों में संगोष्ठी करने का निर्णय लिया है। चार विषयों में एक जलियाँवाला बाग, नेताजी सुभाष चन्द्र बोस, महात्मा गाँधी और [illegible] पर केन्द्रित होंगी। [illegible] के रूप में [illegible]।

[illegible] सभी अतिथियों ने [illegible] का उद्घाटन किया।

डॉ. [illegible] कुमार श्रीवास्तव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में [illegible] के [illegible] विस्तार से चर्चा की तथा बताया कि यह भूमि नेताजी के [illegible] की भूमि है। जिस प्रकार से नेताजी [illegible] स्टेशन, [illegible] में [illegible] है। [illegible] के द्वारा किया जाता है। [illegible] की स्थिति [illegible] नेताजी के एक ऐतिहासिक [illegible] विश्वविद्यालय [illegible] है। [illegible] प्रतिभागियों ने [illegible] के [illegible] अभिभाषण का [illegible] स्वागत किया।

उद्घाटन सत्र में एक स्मारिका का भी विमोचन किया गया। उद्घाटन सत्र का संचालन डॉ. ओम जी उपाध्याय, निदेशक, शोध व प्रकाशन, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली ने किया।

भोजनावकाश के उपरांत प्रथम तकनीकी सत्र का शुभारंभ अपराह्न [illegible] से किया गया तथा समापन 05:00 में हुआ।

प्रथम तकनीकी सत्र का विषय सुभाष चन्द्र बोस का जीवन एवं [illegible] निर्धारित था। इस सत्र की अध्यक्षता [illegible] विश्वविद्यालय के [illegible] कुलपति प्रो. वैद्यनाथ लाभ जी ने किया। इस सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. [illegible] राय, सदस्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् तथा विषय विशेषज्ञ के रूप में डॉ. [illegible], अजमेर, राजस्थान, डॉ. [illegible], अजमेर, डॉ. [illegible] थे।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. [illegible] कुमार, सहायक प्राध्यापक, [illegible] महाविद्यालय, राँची तथा [illegible] के रूप में सुश्री शोधार्थी [illegible], विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची ने किया।

यह सत्र अत्यंत रोचक व ज्ञानवर्धक रहा। प्रो. वैद्यनाथ लाभ ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में [illegible] विषय की चर्चा की तथा प्रतिभागियों से प्राप्त अनेक प्रश्नों का उत्तर भी उनके तथा विषय विशेषज्ञों के द्वारा दिया गया।

द्वितीय तकनीकी सत्र अपराह्न 03:30 बजे से शुभारंभ हुआ तथा समापन 05:30 बजे हुआ। इस सत्र का विषय नेताजी से जुड़े [illegible]-अनछुए प्रसंग एवं उनकी विरासत निर्धारित था। सत्र की अध्यक्षता प्रो. [illegible] कुमार शुक्ला, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली ने की। इस सत्र के मुख्य वक्ता डॉ. ओम जी उपाध्याय, निदेशक, शोध एवं प्रकाशन, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली थे। विषय विशेषज्ञ के रूप में प्रो. [illegible] श्रीवास्तव, पटना, डॉ. राजकुमार, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची, डॉ. [illegible] भूषण, नई दिल्ली थे।

सत्र संचालन सुश्री [illegible] कुमारी, शोधार्थी, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची तथा धन्यवाद ज्ञापन सुश्री [illegible] कुमारी ने।

इस सत्र का विषय नेताजी से जुड़े [illegible]-अनछुए प्रसंग एवं उनकी विरासत, [illegible] महत्वपूर्ण एवं रोचक था। इस सत्र में प्रतिभागियों ने काफी रुचि ली। [illegible] नेताजी के [illegible] प्रवास, [illegible] जीवन, [illegible] पर केन्द्रित था। डॉ. ओम जी उपाध्याय ने अपने व्याख्यान में कई रोचक एवं ज्ञानवर्धक पहलुओं को उद्घाटित किया। डॉ. उपाध्याय द्वारा प्रश्नों [illegible] समाधान [illegible] किया गया।

तृतीय तकनीकी सत्र का शुभारंभ संध्या 05:00 बजे से हुआ तथा समापन 06:30 बजे सम्पन्न हुआ। इस तकनीकी सत्र का विषय नेताजी एवं [illegible]-कोयलांचल तथा नेताजी का राष्ट्र को योगदान सुनिश्चित था। इस सत्र की अध्यक्षता डॉ. [illegible] कुमार, विभागाध्यक्ष, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद द्वारा किया गया। मुख्य वक्ता के रूप में डॉ. [illegible] लोचन, [illegible] विभाग, पी.एम. कॉलेज, [illegible] तथा विषय विशेषज्ञ [illegible] सिंह [illegible], धनबाद थे। सत्र का संचालन श्रीमती [illegible] तथा धन्यवाद ज्ञापन [illegible] द्वारा किया गया। इस सत्र में भी सभी प्रकार के प्रश्नों का समुचित जवाब [illegible] तथा विषय विशेषज्ञ द्वारा दिया गया।

[illegible] संगोष्ठी के [illegible] सांस्कृतिक कार्यक्रम [illegible] विनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय के छात्र-छात्राओं द्वारा प्रस्तुत किया गया।

दिनांक 16 जून, 2019 को संगोष्ठी के दूसरे दिन कुल तीन तकनीकी सत्र एवं एक समापन सत्र निर्धारित थे।

चतुर्थ तकनीकी सत्र प्रातः 09:30 शुभारंभ होकर 11:30 बजे समाप्त हुआ। इस सत्र का विषय जलियाँवाला बाग नरसंहार, एक पुनर्विवेचन निर्धारित था। इस सत्र के अध्यक्ष प्रो. राजीव [illegible]

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना एवं सदस्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं मुख्य वक्ता प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी, पंडित दीनदयाल उपाध्याय विश्वविद्यालय, गोरखपुर थे। सत्र के विषय विशेषज्ञ के रूप में प्रो. अनुराधा सिंह, वाराणसी, डॉ. विकास कुमार, डॉ. उमेश कुमार उपस्थित थे। सत्र का संचालन कुमारी मीनाक्षी एवं प्रतिवेदक के रूप में कुमारी दीपा कुमारी थी।

इस सत्र के निर्धारित विषय ऐतिहासिक काल गणना: एक पुनर्विवेचन पर प्रो. राजीव [illegible] एवं प्रो. हिमांशु चतुर्वेदी जी के व्याख्यान को काफी सराहा गया। प्रतिभागियों की ओर से प्रश्नों का उत्तर भी मंच द्वारा दिया गया।

प्रातः 11:15 से 12:45 तक पंचम अकादमिक सत्र निर्धारित समय से प्रारंभ हुआ। इस सत्र के विषय भारतीय इतिहास लेखन: चुनौतियाँ एवं नवीन परिप्रेक्ष्य था जिसकी अध्यक्षता प्रो. नारायण राय, सदस्य, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली तथा मुख्य वक्ता डॉ. ओम जी उपाध्याय, निदेशक, शोध एवं प्रशासन, इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली तथा विषय विशेषज्ञ डॉ. रमेश चन्द्र [illegible], डॉ. [illegible] तिवारी, सहायक प्रोफेसर, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, कुमारी अनुराधा [illegible], संगठन सचिव, [illegible] उपस्थित थीं। सत्र का संचालन श्री [illegible] कुमार साहु, शोधार्थी एवं प्रतिवेदक श्री [illegible] कुमार थे।

इतिहास लेखन की चुनौतियों पर डॉ. ओम जी उपाध्याय का व्याख्यान तथ्यपरक था। डॉ. नारायण राय जी ने विषय पर अपना अध्यक्षीय उद्बोधन सारगर्भित रूप से प्रस्तुत किया।

भोजनावकाश के बाद अपराह्न 02:30 बजे से षष्ठम अकादमिक सत्र प्रारंभ हुआ। इस सत्र के विषय भारतीय इतिहास लेखन एवं अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना-सांगठनिक विमर्श निर्धारित था। इस अंतिम सत्र की अध्यक्षता अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना के राष्ट्रीय कार्यकारी अध्यक्ष डॉ. देवी प्रसाद सिंह ने किया। इस सत्र में सांगठनिक चर्चा होने की वजह से मुख्य वक्ता के रूप में अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली के संगठन सचिव डॉ. बाल मुकुन्द पाण्डेय जी थे। विषय विशेषज्ञ के रूप में श्री [illegible], [illegible] संगठन मंत्री उपस्थित थे। सत्र का संचालन डा. कौशल कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, विश्वविद्यालय इतिहास विभाग, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद तथा प्रतिवेदक कुमारी [illegible] ठाकुर ने किया।

राष्ट्रीय अध्यक्ष एवं संगठन सचिव द्वारा सांगठनिक चर्चा के दौरान जनपदस्तर की स्थिति, कोष की वर्तमान स्थिति, इतिहास दर्पण प्रकाशन तथा विषय को लेकर इतिहास दिवस मनाने की स्थिति पर विस्तृत चर्चा की गयी। साथ ही देश भर में सत्र के निर्धारित [illegible] विषय और [illegible] पर भी चर्चा की गयी। संगठन सचिव डॉ. बाल मुकुन्द पाण्डेय जी द्वारा इतिहास संकलन समिति, झारखण्ड के कार्यकर्ताओं तथा सामान्य सदस्यों के साथ विचार का संकलन के कुछ तथ्यों को समझाया।

समापन समारोह का आयोजन अपराह्न 03:30 से प्रारंभ हुआ। मंच आसीन [illegible] एवं दीप प्रज्वलन के साथ समापन सत्र का शुभारंभ किया गया। सरस्वती वंदना श्री मुकेश कुमार द्वारा किया गया। मंचस्थ अतिथियों का परिचय संगोष्ठी की संयोजिका कुमारी [illegible] ने किया तथा स्वागत भाषण डॉ. [illegible], आयोजन सचिव द्वारा किया गया। संगोष्ठी में इतिहास संकलन समिति, झारखण्ड प्रांत की ओर से प्रतिवेदन डॉ. गुरुदेव कुमार द्वारा प्रस्तुत किया गया।

समारोह की अध्यक्षता प्रो. [illegible] सिंह, वाराणसी द्वारा किया गया। समारोह के मुख्य अतिथि डॉ. सुष्मिता पाण्डेय, पूर्व अध्यक्ष, [illegible], नई दिल्ली द्वारा प्रस्तुत किया गया। बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद के प्रतिकुलपति ने कार्यक्रम की सफलता एवं इसकी प्रारंभिक तैयारी से लेकर समापन तक की पूरी जिम्मेदारी व्यक्त करते हुए विश्वविद्यालय स्तर से सभी लोगों को कुछ सहयोग की तथा अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली की झारखण्ड इकाई इतिहास संकलन समिति को भी धन्यवाद ज्ञापित किया।

इतिहास संकलन समिति, झारखण्ड के अध्यक्ष डॉ. [illegible] कुमार ने समापन समारोह में आभार व्यक्त करते हुए कहा कि अखिल भारतीय इतिहास संकलन योजना, नई दिल्ली को विशेष रूप से धन्यवाद है जिन्होंने इस कार्यक्रम को आहूत करने का अवसर झारखण्ड इकाई को प्रदान किया। उन्होंने रांची, [illegible], गुमला, बोकारो एवं पूर्व [illegible], [illegible] शाखा को आभार व्यक्त किया जिन्होंने आयोजन में सहयोग कर [illegible] किया। भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद को भी डॉ. कुमार ने आभार व्यक्त करते हुये कहा कि बिना इनके सहयोग से यह कार्यक्रम संभव नहीं था।

डॉ. कुमार ने प्रो. अंजनी कुमार श्रीवास्तव, कुलपति, बिनोद बिहारी महतो कोयलांचल विश्वविद्यालय, धनबाद को भी आभार व्यक्त करते हुए कहा कि विश्वविद्यालय सहयोग से ही संपूर्ण कार्यक्रम की सफलता संभव हो पायी है, जिनका भी आभार व्यक्त किया जाए वह कम ही होगा।

अंत में डॉ. कुमार ने बी.आई.टी., सिन्दरी के निदेशक तथा उनके कर्मचारियों को आभार व्यक्त किया जिन्होंने तीन दिन अथक परिश्रम के द्वारा सभी प्रतिभागियों को आवास एवं अन्यान्य सुविधाएँ उपलब्ध करायीं।

अन्त में इस संगोष्ठी को सफल बनाने में सभी कार्यकर्ताओं एवं सहयोगियों को साधुवाद दिया।

कार्यक्रम का संचालन डॉ. गुरुदेव कुमार ने किया। कुमारी [illegible] कुमारी द्वारा गाये गये राष्ट्रगान के साथ कार्यक्रम संपन्न हुआ।

SHODHAK
शोधक

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certified that the article entitled

प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वाद्ययंत्र (वैदिक काल से महाकाव्य काल तक)

Authored By

डॉ० मनीशा कुमारी

असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक), निर्मला महाविद्यालय, राँची

Published in Vol. 52, Issue-3 (October-December) 2023

SHODHAK (ISSN: 0302-9832)

UGC-CARE List Group I

Impact Factor: 5.9

Editor-in-Chief

शोध-प्रभा

CERTIFICATE OF PUBLICATION

This is to certified that the article entitled

झारखण्ड के जनजातीय वाद्ययंत्रों की शैली

Authored By

डॉ० मनीशा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक), निर्मला महाविद्यालय, राँची

University Grants Commission

Published in Vol. 48, Issue-4 (October-December) 2023
SHODHA PRABHA (ISSN: 0974-8946)
UGC-CARE List Group I

Impact Factor: 6.1

Editor-in-Chief

आलोचना

त्रैमासिक

Certificate of Publication

This is to certify that

डॉ० मनीशा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक), निर्मला महाविद्यालय, राँची

For the paper entitled

झारखण्ड का जनजातीय वाद्ययंत्र : नगाड़ा

Volume No. 64 No. 2, October 2023

In

ALOCHANA

Impact Factor: 4.7

UGC-CARE Listed Group-I

ALOCHANA
EDITOR IN CHIEF

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

झारखण्ड का जनजातीय वाद्ययंत्र : नगाड़ा

डॉ० मनीषा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक), निर्मला महाविद्यालय, राँची

वाद्य जीवन के ताने-बाने का वह धागा है जिसके बिना जीवन सत् और चित् का अंश होकर भी आनन्दरहित रहता है और नीरस प्रतीत होता है। यह न तो सामान्य शिक्षण अथवा व्यसन-पूर्ति की वस्तु है और न ही कठिन परिश्रम के परिहार्थ साधारण सा मनोरंजन मात्र।

वाद्य ईश्वरीय वाणी है, अतः वह ब्रह्मरूप है। शास्त्रों से ज्ञात होता है कि ब्रह्म एक, अखण्ड, अद्वैत होते हुए भी परब्रह्म और शब्द ब्रह्म - इन दो रूपों में कल्पित होता है। शब्द ब्रह्म को भलीभाँति जान लेने से परब्रह्म की प्राप्ति होती है। वस्तुतः सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही नाद-मय है। नाद से वर्ण, वर्ण से शब्द, शब्द से वाक्य और वाक्यों से भाषा उद्भूत होती है। भाषा से सृष्टि का व्यवहार चलता है, अतएव सम्पूर्ण सृष्टि ही नाद के अधीन है - नादेन व्यज्यते वर्णः पदं वर्णात पदाद्वचः। वचसो व्यवहारोऽयं नादाधीनमती जगत्।।[१]

ब्रह्माण्ड का नाद ही वाद्य का प्रर्यायवाची है जो पर्यावरण में घट-घट बसा है। प्रकृति में सृजित समस्त ध्वनियाँ वाद्य का ही निरूपण करती हैं। वाद्य के बिना ब्रह्माण्ड और मानव शक्तिहीन और कार्यहीन होता है। वाद्य सम्पूर्ण सृष्टि को एक सूत्र में बांधकर मानव के निवास के अनुकूल बनाती है। मनुष्य वाद्यों के कारण जीवन के कठिन पथ को आसानी से पार करता हुआ मोक्ष की प्राप्ति करता है।

वाद्ययंत्र प्रारंभ से ही मानव जीवन का एक महत्वपूर्ण अंग बना हुआ है। उसके बिना मानव की विभिन्न कार्यशैलियाँ प्रभावहीन और निष्प्राय है। झारखण्ड का जनजातीय समाज भी वाद्ययंत्रों के प्रयोग से अछूता नहीं है। जनजातियों के समस्त कार्यकलाप उनके वाद्ययंत्रों से ही जुड़ा है। झारखण्ड के विभिन्न जनजातीय समाज में अनेक प्रकार के पारंपरिक वाद्ययंत्र प्रचलित है। इन पारंपरिक वाद्ययंत्रों में अनेक महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र है जो विभिन्न अवसरों में उपयोग किए जाते हैं। इन वाद्ययंत्रों में नगाड़ा घन वाद्ययंत्रों के रूप में जनजातीय समाज में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है।

प्राचीन ग्रंथों में नगाड़ा का प्रारंभिक नाम दुन्दुभि मिलता है।[२] वैदिक ग्रंथों - वेद, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, संहिताओं, नाट्यशास्त्र, संगीत सार आदि प्राचीन ग्रंथों में नगाड़ा का वर्णन दुन्दुभि के रूप में बहुत विस्तृत रूप से मिलता है।[३] इन ग्रंथों में दुन्दुभि का उद्भव, निर्माण विधि, उसकी महत्ता आदि का विशद वर्णन किया गया है। ऋग्वेद के एक मंत्र में दुन्दुभि को विजय का प्रतीक वाद्य माना गया है। इसमें वर्णन मिलता है - यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्य से। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः।।[४] अर्थात् - हे उलूखल (कूटने की मूसल), यदि तु प्रत्येक गृह में वर्तमान है, तो इस वैदिक कर्म में उसी प्रकार का प्रभूत ध्वनियुक्त शब्द कर, जिस प्रकार विजयी की दुन्दुभि शब्द करती है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

भानुजी दीक्षित ने अमरकोष में इसकी व्युत्पत्ति का उल्लेख किया है - 'दुन्दु' इति शब्देन भाति, इति दुन्दुभि। अर्थात् - 'दुन्दु' ध्वनि से जो प्रकट हो वह 'दुन्दुभि' है।[५] उन्होंने इसकी दूसरी व्युत्पत्ति भी बताते हुए कहा है - द्यामुभति (शब्देन)। 'उभूपरेण'। जो आकाश को शब्द से भर दे वह है दुन्दुभि।[६]

ऋग्वेद के छठे मण्डल में लगातार तीन ऐसे मंत्र आए हैं जिनमें दुन्दुभि का उल्लेख है - उप श्वासय पृथिवीमुत द्यां पुरूत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराद्यवीयो अप सेध शत्रून।।[७] अर्थात् - हे दुन्दुभि, पृथिवी और आकाश दोनों को तू अपनी ध्वनि से भर दें जिससे स्थावर और जंगम दोनों तेरे घोष को जान जाए। तू जो इन्द्र और देवों का सहचर है, हमारे शत्रुओं को देर भगा दे।

आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निःष्टनिहि दुरिता बाधमानः। अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीकयस्व।।[८] अर्थात् - हे दुन्दुभि, तू हमारे शत्रुओं के विरूद्ध घोष कर। हमें बल दे। दुष्टों को भयभीत करते हुए शब्द कर। जिन्हें हमें दुख पहुँचाने में ही सुख मिलता है, उन्हें भगा दे। तू इन्द्र की मुष्टि है। हमें दृढ़ कर।

आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्तिं नो नरोडस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु।[९] अर्थात् - हे इन्द्र, हमारे पशुओं को हमें वापस दो। हमारी दुन्दुभि हमारे संकेत के समान बार-बार घोष करती है। हमारे नेता अश्वारूढ़ होकर एकत्र होते है। हे इन्द्र, हमारे रथारूढ़ योद्धा विजयी हों।

इस तरह ऋग्वेद के मंत्रों से स्पष्ट होता है कि दुन्दुभि विजय का घोष कर लोगों का मनोबल बढ़ाने का काम करती थी।

अथर्ववेद के तीन श्लोकों में भी 'दुन्दुभि' शब्द आया है - संजयन्भृतना ऊर्ध्वामायुर्गृह्मा गृहृंणानो बहुधा विचेक्ष्वा। देवीं वाचं दुन्दुभ आ गुरस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः।।[१०] अर्थात् - युद्ध में विजयी होकर, घोर गर्जन करते हुए जो कुछ भी गृह्म है, उसे ग्रहण कर, अपने चारों ओर देख। हे दुन्दुभे, जयघोष करते हुए दैवी वाक् बोल, हमारे शत्रुओं के वस्तुजात को हमारे लिए ला।

दुन्दुभेर्वाचं प्रयतां वदन्तीमाश्रृण्वति नाथिता घोषबुद्धा। नारी पुत्रं धावतु हस्तग्रह्यामित्री भीता समरे वधानाम्।।[११] अर्थात् - दुन्दुभि की घोष करती हुई ध्वनि को सुनकर शत्रु की स्त्री, घोष से जगकर, अपने पुत्र को लेकर, भयंकर हथियारों के संघर्ष के बीच, भयभीत होकर भागे।

पूर्वो दुन्दुभे प्रवदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वद रोचमानः। अतित्रसेनामभिजञ्जभानो द्युमद्वद दुन्दुभे सूनृतावत्।।[१२] अर्थात् - हे दुन्दुभे, तू पहले अपने वाक् को बोल, भूमि के पृष्ठ पर प्रसन्न होकर बोल, शत्रुओं की सेना को कुचलते हुए अपने संदेश को मधुर और स्पष्ट रूप से घोषित कर।

दुन्दुभि का एक प्रकार भूमि दुन्दुभि का भी उल्लेख मिलता है। यज्ञ-मण्डप में एक ओर भूमि में गड्ढा खोदकर, उस पर चमड़ा मढ़ कर, उसे चारों ओर खूँटियों से कस दिया जाता था। इसे भूमि दुन्दुभि कहा जाता है।[१३] छोटे बैल की पूँछ की हड्डी से इसे बजाया जाता था। इसका वर्णन 'सामसूत्र' में आया है। सम्भवतः यह सामगान के समय बजती थी।[१४]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में श्लोक संख्या ३, ४, १३ में वीणा, शंख और तूणव के साथ दुन्दुभि का भी उल्लेख मिलता है - महसे वीणावादम्। क्रोशाय तूणवध्मम्। आक्रन्दाय दुन्दुभ्याघातम् अवरस्पराय शंखध्मम्।[१५] तैत्तिरीय आरण्यक

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

(५.१.५) में भूमिदुन्दुभि का उल्लेख मिलता है।[१६] बृहदारण्यक उपनिषद् के २.४ के ७–९ तक के श्लोक में दुन्दुभि, शंख और वीणा का वर्णन मिलता है।[१७] शतपथ ब्राह्मण (५,१,५,६), वाजसनेयी संहिता (१६,५), काठक संहिता (३४,३५), सांख्यायन श्रौतसूत्र (१७,२४,११) में भी दुन्दुभि का वर्णन किया गया है।[१८]

नाट्यशास्त्र में दुन्दुभि के उत्पत्ति के संबंध में एक श्लोक मिलता है – देवानां दुन्दुभिं दृष्टवा चकार मुरजं ततः। आलिंग्यमूर्ध्वकञ्चैव तथैवान्किकमेव च।।[१९] अर्थात् – और फिर देवगण के दुन्दुभि नामक वाद्य को देखते हुए उनसे मुरज, आलिंगक, ऊर्ध्वक और आंकिक जैसे अवनद्य वाद्यों का निर्माण कर डाला।

नाट्यशास्त्र में एक अन्य स्थान पर दुन्दुभि की आकृति के संबंध में उल्लेख मिलता है – भेरीपटहजञ्झाभिस्तथा दुन्दुभिडिण्डिमैः। शैथिल्यादायतत्वाच्च गाम्भीर्यमिष्यते।।[२०] अर्थात् – भेरी, पटह, जञ्झा (झांझ), दुन्दुभि तथा डिण्डिम को भी बजाते समय उनके विस्तार के कारण बड़े आकार में होने और शिथिल या ढीले बंधन रहने पर भी केवल गंभीर ध्वनि की ही अपेक्षा रखी जाती है।

संगीतरत्नाकर में तीन श्लोकों में दुन्दुभि का उल्लेख किया गया है – आम्रदुमसमुद्भूतो महागात्रो महाध्वनिः। कांस्यभाजनसम्भारगर्भो वलयवर्जितः।।[२१], चर्मनद्धाननो बद्धो बध्रैर्गाढ़ समन्ततः। दृढ़चर्मेण कोणेन वाद्यो वर्णेन दुन्दुभिः।।[२२], मेघनिर्घोषगम्भीरघोंकारस्यात्र मुख्यता। मंगले विजये चैव वाद्यते देवतालये।।[२३]

इस तरह दुन्दुभि में एक ही नग होता था जो बड़ा होता था। प्राचीन दुन्दुभि और भूमि दुन्दुभि एक ही नग का बड़ा नगाड़ा जैसा होता था लेकिन जब से उसका संबंध शहनाई आदि से हुआ तब से उसमें भी भीषण तथा जोरदार ध्वनि उत्पादन के अतिरिक्त मृदंग जैसे पाटाक्षर निकालने की आवश्यकता हुई। इसलिए उस बड़े आकार के साथ एक छोटे आकार की झील का समावेश हुआ। इसके कारण दुन्दुभि में मृदंग आदि के पाटाक्षर आसानी से निकलने लगे।[२४] संगीत रत्नाकर के बाद ही दुन्दुभि को नगाड़ा कहा जाने लगा था जिसमें दो नग होते थे।[२५] दुन्दुभि के दो नग के संबंध में संगीतसार में विस्तृत उल्लेख किया गया है।[२६]

प्रायः दुन्दुभि में दो नग होते थे– एक बड़ा नगाड़ा जिसका शब्द गंभीर होता था तथा एक छोटा नगाड़ा जिसका शब्द छोटा और ऊँचा होता था। इस प्रकार यह दो स्वर वाला दो नग का वाद्य 'दुन्दुभि' कहलाता था। छोटा नगाड़ा मिट्टी का बना होता था जिसे झील या अघोटी कहते थे। यह चमड़े का मढ़ा हुआ तथा चमड़े की डोरियों से कसा हुआ होता था। दूसरा नगाड़ा बड़ा होता था जो शंकु के आकार का धातु का बना होता है। इसके मुख का व्यास लगभग एक हाथ का होता था तथा स्थूल चमड़े से मढ़ा होता था। यह नगाड़ा इच्छानुसार बड़ा बनाया जा सकता था। यह दो शंकु आकार की गोल लकड़ियों से बजाया जाता था जो प्रायः एक हाथ लम्बी होती थी। उत्तर प्रदेश में प्रचलित नगाड़ा जो नोटंकी के साथ बजाया जाता है, दुन्दुभि से पूर्ण साम्य रखता है।[२७]

उपर्युक्त वर्णन से ज्ञात होता है कि दुन्दुभि में दो नग होते हैं – एक बड़ा नगाड़ा जिसका शब्द गंभीर होता है तथा एक छोटा नगाड़ा जिसका शब्द छोटा और ऊँचा होता है। इस प्रकार यह दो स्वर वाला दो नग का वाद्य 'दुन्दुभि' कहलाता है। छोटा नगाड़ा मिट्टी का बना होता था जिसे झील या अघोटी कहते है। यह चमड़े का मढ़ा हुआ तथा चमड़े की डोरियों से कसा हुआ होता था। दूसरा नगाड़ा बड़ा होता था जो शंकु के आकार का धातु का बना होता था। इसके मुख का व्यास लगभग एक हाथ का होता था तथा स्थूल चमड़े से मढ़ा होता था। यह नगाड़ा

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

इच्छानुसार बड़ा बनाया जा सकता था। यह दो शंकु आकार की गोल लकड़ियों से बजाया जाता था जो प्रायः एक हाथ लम्बी होती थी। उत्तर प्रदेश में प्रचलित नगाड़ा जो नोटंकी के साथ बजाया जाता है, दुन्दुभि से पूर्ण साम्य रखता है।[२८]

रामायण के युद्धकाण्ड में भी दुन्दुभि का उल्लेख शंख के साथ किया गया है - शंखदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम्। पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत्।।[२९] अर्थात् - राक्षसों और वानरों के संग्राम में शंख और दुन्दुभि के घोष और वेगवान राक्षसों के सिंहनाद ने पृथिवी, आकाश और समुद्र को प्रतिध्वनित कर दिया।

महाभारत के उद्योगपर्व में दुन्दुभि का उल्लेख शंख के साथ मिलता है - ततस्तु स्वरसम्पन्नाः बहवः सूतमागधा। शंखदुन्दुभिनिर्घोषैः केशवं प्रत्यबोधयन्।।[३०]

जैन ग्रंथ रायप्पसेणिज्ज में वाद्ययंत्रों की सूची १८ वर्गों में दी गई है जिसके चौथे वर्ग में दुन्दुभि का वर्णन मिलता है - तालिज्जंताणं भेरीणं झल्लरीणं दुन्दुहीणं।[३१] इस प्रकार नगाड़ा का वर्णन प्राचीन साहित्यों में दुन्दुभि के रूप में मिलता है।

नगाड़ा झारखण्ड का प्रथम वाद्य माना जाता है जो शुभकार्य, युद्ध, शिकार, नृत्य, मुनादी पीटने, अखरा में बैठक बुलाने आदि में इसका उपयोग किया जाता है।[३२] यह ढाँक का सहयोगी वाद्ययंत्र है। ढोल, ढाँक और नगाड़ा की तिगड़ी का झारखण्डी अखरा में सबसे अच्छा तालमेल रहता है। इन तीनों के गड़गड़ाने से रसिकों में अखरा चढ़ने के लिए बैचेन हो जाते है। इससे बादलों के गड़गड़ाने जैसी ध्वनि निकलती है। नगाड़े, ढाँक और ढोल की तीव्र ध्वनि से घरों के खपड़े तक भी खिसकने लगते है। पीट कर बजाए जाने वाले बाजे में नगाड़े की ध्वनि सबसे बुलंद होती है। इसका उपयोग ढाँक की तरह ही होता है। जहाँ इसकी आवाज से कायरों या जानवरों का दिल दहलने लगता है, वहीं रसिकों का दिल गद्‌गद हो जाता है। इसकी कर्णप्रिय ध्वनि से स्वतः हाथ-पैर नृत्य के लिए थिरकने लगता है। नगाड़े मुख्यतः तीन श्रेणियों के होते है-संताली, हो, बिरहोर आदि का नगाड़ा छोटा होता है।[३३] मुण्डा, उराँव, खड़िया एवं सदानों का नगाड़ा बड़ा होता है।[३४] कुछ मध्य श्रेणी के भी नगाड़े होते है। अखरा में नृत्य-संगीत के अलावे मुनादी पीटने में युद्ध व बलि के समय इसका विशेष प्रयोग होता है। इसकी तीन श्रेणिया है[३५] -

क) वृहद नगाड़ा

यह इतना बड़ा होता है कि इसे चार-छः या शक्तिशाली आदमी लम्बे मोटे मजबूत बाँस पर ढोकर चलते हैं और दो-चार बजाने वाले होते हैं। यह पड़हा राजा, राजे-महाराजे, जमींदार या विशेष लोगों द्वारा बनवाया जाता था तथा उपहार में नायकों को दिया जाता था। इसकी ध्वनि बहुत तेज होती है लेकिन अब यह लुप्त प्राय हो रहा है। इसको ढाँक के साथ मिलाकर बजाया जाता है। सदानों, मुंडाओं, उराँवों, खड़ियाओं में यह बहुत प्रचलित है।

ख) मध्यम नगाड़ा

यह भी बड़े नगाड़े की तरह ही होता है और इसका वजन भी बहुत रहता है। ताकतवर व्यक्ति ही इसे गले में टांग कर या जमीन पर तिरछे रख कर बजाते हैं। इसकी बनावट भी बड़े नगाड़े की तरह ही खूबसूरत होती है। इसका सभी आदिवासी सदान में प्रयोग किया जाता है।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

ग) छोटा नगाड़ा

यह भी संताली, खोरठा और हो में प्रयोग होता है। इसे कमर में बांधकर छोटी पतली खाड़ी से बजाया जाता है। इसकी आवाज बड़े नगाड़े की तुलना में हल्की होती है।

झारखण्ड के जनजातीय समाज में नगाड़ा की महत्ता उनके लोकगीतों से स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। विभिन्न जनजातीय लोकगीतों में नगाड़ा का वर्णन किया गया है। मुण्डा लोकगीतों में नगाड़ा का वर्णन मिलता है - 'ओको कोरे हो को सुसुन तना, केड़ा बोः नगेरा को दुडुसाव जदा। चिमए कोरे हो को करम तना, सेता मोचा मुरली को ओरों जदा।।'[३६] अर्थात् - लोग कहाँ नाच रहे हैं? भैंस सिर सा नगाड़ा बजा रहे है। लोग किधर करमा नाच रहे हैं? कुत्ता मुँह सा मुरली बजा रहे हैं।

जनजातीय नगाड़ा की आकृति और बनावट अलग-अलग जनजातियों में भिन्न-भिन्न होती हैं परंतु अधिकांशतः सभी स्थानों में प्रचलित नगाड़ा गुम्बदाकार है।[३७] इसके निर्माण में लोहे के चदरे का प्रयोग किया जाता है। यह नगाड़ा पाँच से छः फीट के व्यास वाले तथा ८ इंच से लेकर ४ फीट की ऊँचाई में बनाई जाती है।[३८]

नगाड़ा का निर्माण चमड़े की सहायता से किया जाता है। लोहे के चदरे के ऊपर चमड़ा मढ़ दिया जाता है।[३९] इसे कसने के लिए बाधी बनाई जाती है। यह बाधी जो एक रस्सी या ताँत की तरह होती है, जानवरों के पतले चमड़े से बनाया जाता है। इस बाधी को जाल की तरह बनाया जाता है जो देखने में बहुत आकर्षक लगता है। नगाड़ा के सबसे नीचले हिस्से पेंदे में कपड़े या चमड़े का रिंग लगाया जाता है। बाधी का जाल इसी रिंग के माध्यम से खींचा या ताना जाता है। इसी रिंग की सहायता से नगाड़ा को सीधा रख सकते है। इस रिंग को जनजातीय भाषा मे नेठो या बिंडा कहा जाता है।[४०] इस रिंग के दो किनारों पर ऊपर से चमड़े के बने हुए रस्सी या नेवार के टंगने नगाड़ा को उठाने के लिए लगाया जाता है। जिस भाग पर डंडे से प्रहार कर ध्वनि निकाली जाती है, वह प्रायः मध्य भाग होती है। उस पर खरन (करंज तेल और गंधक) का मोटा लेप लगाया जाता है।[४१] इस लेप के द्वारा चमड़े को कोई नुकसान नहीं होता है। नगाड़ा के खोल के नीचले हिस्से पर एक छोटा छेद किया जाता है। इस छेद के द्वारा नगाड़ा बजाते समय हवा बाहर निकल जाता है। इसे बजाने से पहले एक बार बाधी को खींचकर कसा जाता है। यह प्रक्रिया अधिकांशतः एक ही बार होता है। अगर यह ढीला होता है तो इसे फिर धूप में रखने के बाद ही कसा जाता है। चमड़े को मुलायम बने रहने के लिए समय-समय पर करंज का तेल लगाया जाता है। खरन को कठोर बनाने के लिए इस पर कोयला का राख या धूल को छानकर रखा जाता है। बजाने के लिए दो लकड़ी की खाड़ी (डंडा) का प्रयोग किया जाता है जो हलका झुका रहता है।[४२]

नगाड़ा में प्रयोग किया गया चमड़ा भैंस का होता है।[४३] इस चमड़े को नगाड़े में लगाने से पूर्व कई प्रक्रियाओं से गुजारा जाता है। सबसे पहले भैंस के चमड़े की व्यवस्था की जाती है। इस कार्य को चमड़े से जुड़े हुए जाति के द्वारा ही किया जाता है। उसके बाद इस चमड़े को रोम रहित किया जाता है। सारे बालों को निकालने के बाद इसे रात भर के लिए पानी में भिंगोकर रख दिया जाता है। जब वह रातभर पानी में फुल जाता है तब उसे दूसरे दिन पानी से निकाला जाता है। उसके बाद उसको बहुत मर्दन किया जाता है। तब यह चमड़ा इस वाद्ययंत्र में चढ़ाने के लिए तैयार हो जाता है। यह चमड़ा न अधिक पुराना होना चाहिए और न ही कहीं से कटा या फटा होना चाहिए।

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

यह किसी पक्षी के द्वारा भी नोचा हुआ नहीं होता है। इसकी मोटाई भी अधिक नहीं होनी चाहिए तथा आग अथवा धुएँ से भी जला हुआ न हो। जनजातीय वाद्ययंत्रों में जब भी किसी चमड़े का प्रयोग किया जाता है, तो वह पूरी तरह स्वच्छ एवं सफेद होता है।[४४]

इसी प्रकार इसमें प्रयोग किये जाने वाला करंज तेल को भी एक लंबी प्रक्रिया के द्वारा बनाया जाता है। इस तेल को निर्माणकर्त्ता या तो स्वयं निकालते है या किसी अन्य स्थानों से प्राप्त करते है। करंज तेल को निकालने के लिए सर्वप्रथम करंज के वृक्ष में लगे हुए फूलों को इकट्ठा किया जाता है। उसी फूल से बीज की प्राप्ति होती है। जब यह बीज पूरी तरह से पक जाता है तो इसे तोड़कर कुछ दिनों तक सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है। इसी सूखे हुए बीज को पेरने वाले मशीन में डालकर इससे तेल प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार तेल प्राप्त करने में कई दिनों का समय लगता है।

गंधक की प्राप्ति झारखण्ड के खानों से होती है, जिसका उत्पादन क्षेत्र हजारीबाग, धनबाद तथा राँची है।[४५] वैसे गंधक का उत्पादन अन्य खनिजों की तुलना में अल्प है।

झारखण्ड से सटे बिहार के रोहतास अवस्थित कैमूर पहाड़ी पर स्थित रोहतास किला जिसका इतिहास मुण्डा, उराँव तथा अन्य जनजातीय समुदाय से जुड़ा है, उसकी उपत्क्या में गंधक भारी मात्रा में पाया जाता है।[४६] परिकल्पना है कि गंधक की उपलब्धता वहाँ से भी होता होगा। शेष सामग्री गाँव के स्तर से प्राप्त की जाती है।

झारखण्ड के जनजातीय लोकगीतों में नगाड़ा के निर्माण में प्रयुक्त लोहे या काँसा के बने खोल का जिक्र किया गया है-'बिरिया नुनगियाते, काँसा का नगरा ठोकै। चांदो नुनगियाते, काँसा का नगरा ठोकै।।'[४७] अर्थात् - सुर्योदय के साथ-साथ गांव के लोग काँसा या लोहे का बना हुआ नगाड़ा बजाते है। संध्या के समय में भी चाँद निकलने के साथ ही इन धातुओं से बनी नगाड़ा बजाते है।

अतः इस लोकगीत के माध्यम से पता चलता है कि नगाड़ा के निर्माण में काँसा या लोहे से निर्मित खोल का प्रयोग होता है। साथ ही इससे यह भी पता चलता है कि इसे सुर्योदय और सुर्यास्त के समय मंदिरों में ईश्वर की अराधना करने के समय बजाया जाता है।

अनेक जनजातीय पर्व-त्योहारों जैसे करमा, सरहुल, सोहराय, रथ मेला आदि के साथ-साथ जनजातीय रीति - रिवाजों में भी नगाड़ा का उपयोग किया जाता है। रीति-रिवाजों में विशेषकर विवाह और मृत्यु के समय नगाड़ा का सर्वाधिक प्रचलन होता है। विवाह के समय जब वर पक्ष का आगमन होता है तब डोम बाजा में ढाँक, ढोल, भेइर, नरसिंहा, तिरियो के साथ नगाड़ा एक महत्वपूर्ण वाद्ययंत्र के रूप में उपस्थित रहता है।[४८] विवाह के समय सर्वप्रथम घर की प्रमुख महिला उन वाद्ययंत्रों को सिंदुर से पूजा करती है, उसके बाद ही विवाह के सभी रस्मों में अन्य वाद्ययंत्रों के साथ नगाड़ा अति उत्साहपूर्वक बजाया जाता है।[४९] उराँव समाज में चुमावन के समय सिर्फ नगाड़ा बजाया जाता है।[५०] मुण्डा समाज में विवाह के अन्य रस्मों में वधु पक्ष के वाद्ययंत्रों को बजाया जाता है लेकिन विदाई के समय वर पक्ष के वाद्ययंत्रों का ही प्रयोग किया जाता है।[५१]

जब किसी की मृत्यु होती है, उस समय भी घासी बाजा में नगाड़ा एक प्रमुख वाद्ययंत्र होता है।[५२] प्रारंभ में मृत्यु की सूचना नगाड़ा के माध्यम से ही लोगों को दिया जाता था। नगाड़ा की ध्वनि सुनकर ही लोग शवयात्रा के

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

समय इकट्ठा होते और शव को श्मसान ले जाते। जब तक शव को दफन या जला नहीं दिया जाता तब तक नगाड़ा की ध्वनि गूँजती रहती।[५३] इसके अतिरिक्त प्रारंभ में नगाड़ा एक संपर्क का माध्यम था। जब किसी को किसी प्रकार की सूचना देनी होती, वह नगाड़ा गाँव में बजाकर ही सूचना देता था। रात्रि के समय यदि किसी के घर में चोर आ जाता जब गाँव वालों को सहायता प्राप्त करने के लिए वह दो बार नगाड़ा बजाता। यदि विपत्ति कम होती तब वह तीन बार नगाड़ा बजाता और अधिक विपत्ति होने पर पाँच बार नगाड़ा को बजाया जाता था। यदि किसी की मृत्यु हो जाती तब १० बार नगाड़ा बजाया जाता था।[५४] इस प्रकार नगाड़ा मनोरंजन के साथ-साथ संपर्क का भी एक महत्वपूर्ण माध्यम था।

संदर्भ सूची

१. *संगीत दर्पण,* १.४
२. ओंकार प्रसाद, *संताल म्युजिक,* इंटर इंडिया पब्लिकेशन, नई दिल्ली, पृ.सं. ९२
३. वही, पृ.सं. ९२,९३
४. *ऋग्वेद,* १.२८.५
५. ठाकुर जयदेव सिंह, *भारतीय संगीत का इतिहास,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २०१६, पृ. ३०
६. वही
७. *ऋग्वेद,* ६.४७.२९
८. *ऋग्वेद,* ६.४७.३०
९. *ऋग्वेद,* ६.४७.३१
१०. *अथर्ववेद,* ५.२०.४
११. *अथर्ववेद,* ५.२०.५
१२. *अथर्ववेद,* ५.२०.६
१३. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ.स. ३१,३२
१४. कृष्णराव गणेश मुले, *भारतीय संगीत,* पृ.सं. ४२
१५. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ.स. ३२
१६. वही
१७. वही
१८. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००२, पृ.सं. १६६
१९. *नाट्यशास्त्र,* त्रयत्रिंशोऽध्याय, श्लोक ११
२०. वही, श्लोक २७
२१. *संगीत रत्नाकर,* वाद्याध्याय, श्लोक ४५
२२. वही, श्लोक ४६

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

२३. वही, श्लोक ४७
२४. लालमणि मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. १६३
२५. वही
२६. वही
२७. *संगीतसार,* भाग २, पृ.सं. ७५
२८. लालमणि मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. १६८,१६९
२९. *वाल्मीकीकृत रामायण,* युद्धकाण्ड, सर्ग ४२, श्लोक ३९
३०. *महाभारत,* उद्योगपर्व, ९४.४
३१. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ.स. ३४
३२. गिरिधारी राम गौंझू, *झारखण्ड का लोकसंगीत,* झारखण्ड झरोखा, राँची, २०१५, पृ.सं. ११६
३३. *झुनुर,* झारखण्ड जनजातीय महोत्सव, १९ अक्टूबर–२१ अक्टूबर, २००१, पृ.सं. १८
३४. वही
३५. *सखुआ,* जनजाजीय एवं क्षेत्रिय महोत्सव, २००८, कला, संस्कृति, खेलकूद एवं युवा कार्य विभाग, झारखण्ड सरकार, पृ.सं. १४
३६. साक्षात्कार – सोमा सिंह मुण्डा, दिनांक – ०७.०७.२०२०
३७. मनपूरन नायक, *नागपुरी लोकगीत एवं मांदर के ताल,* झारखण्ड झरोखा, राँची, २०१६, पृ.सं. २७
३८. वही
३९. गिरीधारी राम गौंझू, पूर्वोद्धृत, पृ.सं. ११७
४०. वही
४१. साक्षात्कार – *सरन उराँव,* तिथि – २५.०८.२०१९
४२. वही
४३. साक्षात्कार – सोमा सिंह मुण्डा, दिनांक – ०७.०७.२०२०
४४. वही
४५. वही
४६. वही
४७. सेम टोपनो, *म्युजिकल कल्चर ऑफ द मुण्डा ट्राइब,* कॉन्सेप्ट पब्लिशिंग कंपनी, नई दिल्ली, २००४, पृ. २०
४८. साक्षात्कार – सोमा सिंह मुण्डा, दिनांक – ०७.०७.२०२०
४९. वही
५०. साक्षात्कार – *सरन उराँव,* तिथि – २५.०८.२०१९
५१. साक्षात्कार – सोमा सिंह मुण्डा, दिनांक – ०७.०७.२०२०
५२. वही

ISSN No. 2231-6329
(UGC-CARE Listed Group-I)

५३. वही

५४. साक्षात्कार - *सरन उराँव,* तिथि - २५.०८.२०१६

Shodhak (शोधक) **(ISSN: 0302-9832)**
A Journal of Historical Research

प्राचीन ग्रंथों में वर्णित वाद्ययंत्र (वैदिक काल से महाकाव्य काल तक)

डॉ० मनीषा कुमारी
असिस्टेंट प्रोफेसर (अतिथि शिक्षक), निर्मला महाविद्यालय, राँची

सृष्टि की उत्पत्ति के समय से ही मानव और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। मनुष्य का प्रकृति से घनिष्ठ संबंध हमेशा से ही रहा है और इन संबंधों में सबसे मनोहारी और आकर्षित पक्ष वाद्य है। वाद्य के नाभनाल से ही संगीत की सुरमयी रचना हुई। प्रकृति के तत्व झील, नदी, समुद्र, पर्वत, पहाड़, वन-उपवन, पवन आदि झंकृत हुए, तब वाद्य ने रूप लिया। यह प्रकृति के अन्तःकरण में रचा-बसा है। इस वाद्य से ही राग-ताल-सुर की यात्रा प्रारंभ होकर संगीत तक सफर करती हुई उसकी सहयोगी बन जाती है। वाद्ययंत्रों के बिना संगीत की उत्पत्ति असंभव है। जब मनुष्य यायावर की तरह अपना जीवन यापन कर रहा था, उसी समय से उन्होंने प्रकृति के सानिध्य से वाद्ययंत्रों का निर्माण करना सीख लिया था। इनके द्वारा वाद्ययंत्रों का निर्माण करने का प्रमुख कारण जंगलों में मौजूद अति हिंसक जानवर थे। जानवरों को स्वयं से दूर रखने के लिए अति तीव्र ध्वनि वाले वाद्ययंत्रों का निर्माण किया गया।[१] इन वाद्ययंत्रों को बजाने के कारण हिंसक जानवर डर से भाग जाते थे। कालांतर में यही वाद्ययंत्र उनके मनोरंजन का साधन बन गए।

प्रारंभ में लोगों द्वारा बनाया और उपयोग किया गया विभिन्न वाद्ययंत्र अनेक कालों से होते हुए जनजातियों का प्रमुख वाद्ययंत्र के रूप में अपनी महत्ता स्थापित कर ली। प्राचीन ग्रंथों में अनेक वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है जिसका प्रयोग बाद में जनजातीय समुदायों द्वारा विशेष रूप से किया जाने लगा। प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न देवी-देवताओं द्वारा अनेक वाद्ययंत्रों का प्रयोग करते हुए वर्णन किया गया है जिसका प्रयोग झारखण्ड का जनजातीय समाज बाद में करने लगे। प्राचीन ग्रंथों में प्रयुक्त वाद्ययंत्र जनजातियों में अलग नामों से जाने गए।

प्राचीन ग्रंथों में शिव को वाद्ययंत्रों की उत्पत्ति का जनक माना जाता है। उन्होंने सर्वप्रथम डमरू नामक वाद्ययंत्र का प्रयोग किया।[२] शिव द्वारा डमरू बजाने के कारण ही विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति हुई। शिव के नृत्य से भी वाद्ययंत्रों की उत्पत्ति एवं प्रयोग का साक्ष्य मिलता है। शिव नृत्य से संबंधित शिव प्रदोष स्तोत्र में वर्णन मिलता है कि 'तीनों लोकों की यात्रा को बहुमूल्य रत्नजड़ित स्वर्ण सिंहासन पर बिठाकर शूलपाणि कैलाश की ऊँचाइयों पर नृत्य करते है और सभी देवी-देवता उनको घेरे रहते है। सरस्वती वीणा एवं इन्दिरा बाँसुरी बजाती है, लक्ष्मी गीत गाती है, विष्णु मृदंग बजाते है और सभी देवी-देवता खड़े रहते है।'[३] इस स्तोत्र से स्पष्ट होता है कि शिव के डमरू से विभिन्न स्वरों की उत्पत्ति के साथ-साथ वाद्ययंत्रों की भी उत्पत्ति हुई।

वेदों में वर्णित वाद्ययंत्र

ऋग्वेद में चार प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया गया है।[४] ये चार प्रकार है - तत् वाद्य, अवनद्ध वाद्य, घन वाद्य और सुषिर वाद्य।

तत् वाद्य - ऋग्वेद में वर्णित है कि तत 'तन्' धातु से बना है जिसका अर्थ होता है - फैलाना या तानना। जिस वाद्य में काठ पर तार फैलाकर रखे जाते थे, वे तत् वाद्य कहलाते थे। इसमें यह आवश्यक नहीं था कि वे तार लोहे, पीतल अथवा ताँबे जैसी धातुओं के बने हो या मूँज अथवा कुश द्वारा निर्मित हो। सभी प्रकार के तारवाले वाद्य तत् कहलाते थे।[५] ऋग्वेद में अनेक स्थानों में तत् वाद्यों का वर्णन किया गया है। तत् वाद्यों में सबसे प्रमुख वाद्ययंत्र वाण या वीणा था। ऋग्वेद के एक श्लोक में वाण का उल्लेख किया गया है - *''उर्ध्वं नुनुद्रेडवतं त ओजसा दाहहाण चिद्*

बिभिदुर्वि पर्वतम्। धमन्तों वाणं मरूतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे।।"[६] अर्थात् अपने बाल से उन्होंने (मरूतों ने) कूप को ऊपर उठा लिया और पर्वत का जिसने उनके मार्ग का अवरोध किया था, भेदन कर डाला। दानवीर मरूतों ने, वाण बजाते हुए, सोम से मस्त होकर (यजमानों को) रम्य दान दिए।

ऋग्वेद के ८ वें मण्डल में भी वाण का अर्थ वीणा के रूप में हुआ है - *"गोभिर्वाणो अज्यते सोभरीणां रथे कोशे हिरण्यये। गोबन्धवः सुजातास इषे भुजे महान्तो नः स्परसे नु।।"*[७] इसका अर्थ है-मरूत का वाण सुनहले रथों में (स्थित) सोभरियों (ऋषियों) के गान से व्यक्त (ध्वनित) होता है। महान् सुजात मरूत जो गौ की सन्तति हैं, हमें अन्न, भोग और कृपा से समृद्ध करें। इसके अलावा ऋग्वेद के ९वें मंडल में पुनः वीणा के अर्थ में वाण शब्द का प्रयोग किया गया है - *"प्र हंसासस्तृपलं मन्युमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। आड्गूष्यं पवमानं सखायो दुर्मर्षं सांक प्र वदन्ति वाणम्।।"*[८] एवं *"उत्ते शुष्मास ईरते सिन्धोरूर्मेरिव स्वनः। वाणस्य चोदया पविम्।।"*[९] इस प्रकार ऋग्वेद में वीणा का वर्णन वाण शब्द के रूप में अनेक मंत्रों में देखने को मिलता है।

अतः उस समय तन्त्रीयुक्त वाद्य का सामान्य नाम 'वाण' था।[१०] आगे चलकर सभी तन्त्रीयुक्त वाद्ययंत्रों को सामान्य रूप से वीणा कहा जाने लगा गया। अंतर बस इतना था कि प्रत्येक वीणा की विशेषता बताने के लिए उसके पहले एकतन्त्री, सप्ततन्त्री, विपञ्ची आदि विशेषण लगाया जाता था। यह वाद्ययंत्र धनुष के आकार का होता है। अन्य देशों में भी इस प्रकार के वाद्ययंत्र का पता चलता है। सुमेरू, असुर (असीरिया), सुर (सीरिया), मिश्र जैसे देशों में यह वाद्ययंत्र धनुष के आकार का होता था और वहाँ पर भी उसे 'वाण' के नाम से जाना जाता था। अरब में भी तन्त्रीवाद्य को वान या वन्न कहते थे। यूनान में भी इसी प्रकार का वाद्ययंत्र होता था जिसे हार्प (भ्ंतच) कहते थे।[११] उस समय वाण वाद्ययंत्र का बहुत महत्व था। उसकी महत्ता के कारण वह लक्षणा से गान वाद्य मात्र का बोधक हो गया था।

अथर्ववेद में भी इसी लक्षणा के कारण इसका वर्णन मिलता है - *"को अस्मिन्रेतो न्यदिधात्तन्तुरा तायतामिति। मेधां को अस्मिन्नध्यौहत्को को वाणं को नृतो दधौ।।"*[१२] इसका तात्पर्य है, इसमें पुरूष में, मनुष्य में किसने रेत (वीर्य) रखा जिससे कि उसकी सन्तति बढ़ती जाये। किसने इसमें मेधा (ज्ञान) स्थापित की, किसने इसे गान, वाद्य और नृत्य दिया। इसमें लक्षणा के अर्थ में वाण शब्द गान वाद्य के रूप में प्रयोग किया गया है।

इस तरह वाण नामक तन्त्री वाद्ययंत्र का कई जगहों पर वर्णन मिलता है। यह विभिन्न आकार प्रकार का भी बना होता था। इसमें सात से लेकर सौ तारों का प्रयोग किया जाता था। प्रारंभ में इसमें प्रयोग किए गए तार का निर्माण कुश या मूँज नामक घास के द्वारा होता था। इसके निर्माण में उदुंबर या गूलर की लकड़ी का प्रयोग किया जाता था। इस लकड़ी के द्वारा कोष्ठ (फ्रेम) बनाया जाता था। उस पर चमड़ा मढ़ा जाता था। यह चमड़ा लाल बैल का होता था। कोष्ठ के निचले सतह पर १० छेद किये जाते थे। इस छिद्र में दस-दस कुशों का बनाया हुआ तार (रस्सी) डाला जाता था।[१३] इसी प्रकार सौ कुश या मुँज के तारों का भी वाण वाद्ययंत्र का निर्माण किया जाता था।

दूसरे प्रकार के तत् वाद्य जिसका वर्णन ऋग्वेद में किया गया है, वह कर्करि है। ऋग्वेद के एक श्लोक में वर्णित किया गया है - *"आवदंस्त्वं शकुने भद्रमा वद तूष्णीमासीनः सुमतिं चिकिदिध नः। यदुत्पतन्वदसि कर्करिर्यथा बृहद्वदेम विदथे सुवीराः।।"*[१४] अर्थात् हे शकुनि (पक्षी), जब तू बोल तब मंगल ही बोल, जब तू चुप बैठा रहता है, तब तू हमारे प्रति शोभन विचारों को रख, जब तू उड़ते समय बोलता है तब कर्करि के समान बोल, जिससे कि भद्र सन्तति से सम्पन्न होकर, हम इस यज्ञ में पूर्ण रूप से तेरी प्रशंसा करे।

अथर्ववेद में भी कर्करि शब्द नामक वाद्ययंत्र का वर्णन मिलता है - *"यत्र वः प्रेङ्खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कयः संवदन्ति। तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।।"*[१५] इस श्लोक में ककर्यः कर्करि शब्द के बहुवचन के

रूप में प्रयोग हुआ है।

अवनद्ध वाद्य – अवनद्ध वाद्ययंत्रों का निर्माण चमड़े द्वारा मढ़ कर किया जाता है। ऋग्वेद में सबसे प्रसिद्ध अवनद्ध वाद्य दुन्दुभि है। ऋग्वेद में अनेक मंत्र में दुन्दुभि का वर्णन किया गया है। इसमें दुन्दुभि के संबंध में उल्लिखित है – *''यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे। इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः।।''*[१६] अर्थात् हे उलूखल (कूटने की मूसल), यदि तू प्रत्येक गृह में वर्तमान है, तो इस वैदिक कर्म में उसी प्रकार का प्रभूत ध्वनियुक्त शब्द कर, जिस प्रकार विजयी की दुन्दुभि शब्द करती है।

ऋग्वेद के छठे मण्डल में लगातार तीन मंत्रों में दुन्दुभि का उल्लेख किया गया है –*''उप श्वासयं पृथिवीमुत द्यां पुरुत्रा ते मनुतां विष्ठितं जगत्। स दुन्दुभे सजूरिन्द्रेण देवैर्दूराछवीयो अप सेध शत्रून्।।''*[१७] अर्थात् हे दुन्दुभि, पृथिवी और आकाश दोनों को तू अपनी ध्वनि से भर दे जिससे स्थावर और जंगम दोनों तेरे घोष को जान जाएं। तू जो इन्द्र और देवों का सहचर है, हमारे शत्रुओं को दूर भगा दे।

''आ क्रन्दय बलमोजो न आ धा निः ष्टनिहि दुरिता बाधमानः। अप प्रोथ दुन्दुभे दुच्छुना इत इन्द्रस्य मुष्टिरसि वीलयस्व।।''[१८] इसका अर्थ है, हे दुन्दुभि, तू हमारे शत्रुओं के विरूद्ध घोष कर। हमें बल दे। दुष्टों को भयभीत करते हुए शब्द कर। जिन्हें हमें दुख पहुँचाने में ही सुख मिलता है, उन्हें भगा दे। तू इन्द्र की मुष्टि है। हमें दृढ़ कर।

''आमूरज प्रत्यावर्तयेमाः केतुमद्दुन्दुभिर्वावदीति। समश्वपर्णाश्चरन्ति नो नरोस्माकमिन्द्रं रथिनों जयन्तु।।''[१९] अर्थात् हे इन्द्र, हमारे पशुओं को हमें वापस दो। हमारी दुन्दुभि हमारे संकेत के समान बार-बार घोष करती है। हमारे नेता अश्वारूढ़ होकर एकत्र होते हैं। हे इन्द्र, हमारे रथारूढ़ योद्धा विजयी हो। इन तीनों मंत्रों में दुन्दुभि का प्रयोग विजय के प्रतीक के रूप में किया गया है। साथ ही इसकी ध्वनि से शत्रुओं को भयभीत किया जाता था। इस प्रकार ऋग्वेद में दुन्दुभि को विजय सूचक वाद्ययंत्र के रूप में वर्णन किया गया है। विजय घोष के साथ इसका उपयोग उत्सव, मंगल या युद्ध में किया जाता था।

इसके अतिरिक्त अथर्ववेद में भी तीन मन्त्रों में दुन्दुभि शब्द का प्रयोग किया गया है – *''संजयन्नृतना ऊर्ध्वमायुर्गृह्या गृह्णानों बहुधा वि चेक्ष्व। देवी वाचं दुन्दुभ आ गुरूस्व वेधाः शत्रूणामुप भरस्व वेदः।।''*[२०] अर्थात् युद्ध में विजयी होकर, घोर गर्जन करते हुए जो कुछ भी गृह्य है, उसे ग्रहण कर, अपने चारों ओर दो। हे दुन्दुभे, जयघोष करते हुए दैवी वाक् बोल, हमारे शत्रुओं के वास्तुजात को (हमारे लिए) ला।

''दुन्दुभेवीचं प्रयतां वदन्तीमाश्रृण्वती नायिता घोषबुद्धा। नारी पुत्रं धावतु हस्तगृह्यामित्री भीता समरे वधानाम्।।''[२१] अर्थात् दुन्दुभि की घोष करती हुई ध्वनि को सुनकर शत्रु की स्त्री, घोष से जगकर, अपने पुत्र को लेकर, भयंकर हथियारों के संघर्ष के बीच, भयभीत होकर भागे।

''पूर्वो दुन्दुभे प्रवदासि वाचं भूम्याः पृष्ठे वदु रोचमानः। अमित्रसेनामभिजञ्जभानों द्युमद्वद दुन्दुभे सूनृतावत्।।''[२२] अर्थात् हे दुन्दुभे, तू पहले अपने वाक् को बोल, भूमि के पृष्ठ पर प्रसन्न होकर बोल, शत्रुओं की सेना को कुचलते हुए अपने संदेश को मधुर और स्पष्ट रूप से घोषित कर। इसमें दुन्दुभि की निर्माण विधि का भी वर्णन किया गया है। दुन्दुभी के निर्माण में मिट्टी, काँसा या ताँबा का प्रयोग किया जाता है। इसको ऊपर से मढ़ने के लिए चमड़े का प्रयोग किया जाता था और बजाने के लिए हिरण के सिंग या लकड़ी का उपयोग किया गया जाता था।[२३] वेदों में इसके वर्णन से पता चलता है कि इसका उपयोग युद्धों उत्सवों, मंगल के लिए या जयघोष के लिए किया जाता था।[२४] बाद में यह राजमहल और मंदिर के सामने भी बजाये जाने लगा। इसका एक अन्य नाम नगाड़ा भी है।

दुन्दुभि का एक दूसरा प्रकार भी होता था जिसे भूमि दुन्दुभि कहते थे। यज्ञ मण्डप में एक तरफ भूमि में गड्ढा खोदकर उस पर चमड़ा मढ़कर उसे चारों ओर से खूँटियों से कस देते थे। इसे ही भूमि दुन्दुभि कहते थे।

छोटे बैल की पूँछ की हड्डी के द्वारा इसे बजाया जाता था।[२५]

घन वाद्य – घन वाद्य लकड़ी या धातु से निर्मित किया जाता है जिसे आघात कर बजाया जाता है। ऋग्वैदिककालीन सबसे महत्वपूर्ण घन वाद्य आघाटि था। ऋग्वेद के मंत्रों में आघाटि का वर्णन मिलता है – *''वृषार वाय वदते यदुपावति चिच्चिकः। आघटिभिरित धावयत्रारण्यानिर्महीयते।।''*[२६] इसका अर्थ है, जब चिच्चिक वृषारव के प्रत्युत्तर में बोलता है, तब अरण्यानी आघाटि की भाँति ध्वनि करती हुई पूजित होती है।

अथर्ववेद में भी इसी अर्थ में आघाट शब्द का प्रयोग हुआ है – *''यत्रः वः प्रेड.खा हरिता अर्जुना उत यत्राघाटाः कर्कयः संचदन्ति तत्परेताप्सरसः प्रतिबुद्धा अभूतन।।''*[२७] अर्थात्–वहाँ जहाँ तुम्हारे झूलन हरे और प्रकाशमान है और वीणा तथा आघाट (झाँझ) साथ बजते हैं, जब से अप्सरायें वहाँ चली गयी हैं, तुम अवधानपूर्ण हो गये हो। इस प्रकार ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में आघाट (झाँझ) का प्रयोग किया गया है।

सुषिर वाद्य – छेद वाले वाद्ययंत्रों को सुषिर वाद्य कहा जाता है जिसमें ध्वनि वायु के द्वारा निकाली जाती है। ऋग्वेद में वर्णित सबसे प्रमुख सुषिर वाद्य बाकुर और नाड़ी है। ऋग्वेद के एक मंत्र में नाड़ी का उल्लेख किया गया है – *''इदं यमस्य सादनं देवमानं यदुच्यते। इयमस्य धम्यते नालीरयं गीर्भिः परिष्कृतः।।''*[२८] अर्थात् यह यम का सदन है जिसके विषय में यह कहा जाता है कि वह देवताओं द्वारा निर्मित हुआ है। यह 'नाड़ी' उसके प्रीत्यर्थ बजाई जाती है। वह स्तुतियों से तुष्ट होता है।

यजुर्वेद में ऋग्वेद के समान अनेक वाद्ययंत्र का प्रयोग किया गया है। यजुर्वेद में ही सबसे पहले वीणा शब्द का प्रयोग किया गया। इसके अलावा यजुर्वेद में अन्य वाद्ययंत्रों का वर्णन मिलता है। यजुर्वेद के ३०वें काण्ड (अध्याय) के १९वें और २०वें मंत्र में उस समय के प्रचलित वाद्ययंत्रों का वर्णन मिलता है – *''प्रतिश्रुत्कायाऽअर्तनं घोषाय भषमन्ताय बहुवादिनमनन्ताय मूकं शब्दायाडम्बराघातं महसे वीणावादं क्रोशाय तूणवध्ममवरस्पराय शऽखध्मं वनाय वनपमन्यतोरण्याय दाधपम्।।''*[२९] अर्थात्–प्रतिज्ञा के लिए दृढ संकल्पवाले को घोषणा के लिए ऊँचे स्वरवाले को सिद्धान्त के पोषण के लिए बहुभाषी को वितण्डा के लिए मूक को शब्द के लिए आडम्बराघात को, महोत्सव के लिए वीणा बजानेवाले को, ऊँची ध्वनि के लिए तूणव बजानेवाले को, आरपार शब्द ध्वनि पहुँचाने के लिए शंख बजानेवाले को, वन के लिए वनपाल को, अन्य प्रान्तीय वन के लिए दावानल के रक्षक को (जाने)।

''नर्माय पुँश्चलूं हसाय कारिं यादसे शाबल्यां ग्रामण्यं गणकमभिकोशकं तान्महसे वीणावादं पाणिघ्नं तूणवध्मं तान्नृत्तायानन्दाय तलवम्।।''[३०] अर्थात् परिहास के लिए व्यभिचारिणी को, उपहास के लिए बहुरूपिये को, जल–जन्तुओं के लिए शबर जाति के पुरूष को, ग्रामनेता–ज्योतिषी सूचना देनेवाले इनको सत्कार के लिए, महोत्सव के लिए वीणावादक को, ताली बजानेवाले को, नृत्य के लिए तूणव बजानेवाले को, आनंद के लिए तलव को (जाने)।

इस प्रकार यजुर्वेद में दिए गये मंत्रों से विभिन्न प्रकार के वाद्ययंत्रों का पता चलता है जो इस समय प्रचलित था। इसमें जिन वाद्ययंत्रो का नाम आया है वह है–आडम्बर, वीणा, तूणव, शंख, पाणि और तलव। इसमें आडम्बर भेरी वर्ग का एक अवनद्ध वाद्य था। आडम्बर का अर्थ है–चारों और जो ध्वनि को जोर से फेंके वह आडम्बर है। तूणव एक प्रकार का फूँककर बजाया जानेवाला सुषिर वाद्ययंत्र था। शंख भी फूँककर बजाया जाने वाला सबसे महत्वपूर्ण वाद्ययंत्रों में से एक था। इसी प्रकार तलव हाथों द्वारा ताल देकर बजाया जाने वाला वाद्ययंत्र था।[३१] इस तरह यजुर्वेद में अनेक वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया गया है।

सामवेद में भी संगीत और वाद्ययंत्रों का कई मंत्रों में प्रयोग किया गया। इसमें भगवान की भक्ति के लिए संगीत को उपयोगी बताया गया है। इसमें वर्णित है कि संगीत आत्मा की उन्नति का सबसे अच्छा साधन है, इसलिए हमेशा वाद्ययंत्र के साथ गाना चाहिए। वाद्ययंत्र का उल्लेख करते हुए सामवेद में ८वें अध्याय के प्रथम खण्ड में मंत्र

दिया गया है कि - *''प्र हंसासस्तृपला वग्नुमच्छामादस्तं वृषगणा अयासुः। अंगेषिणं पवमानं सखायो दुर्मर्षं वाणं प्र वदन्ति साकम्।।''*[३२] अर्थात्-विवेकवान साधक, शत्रुओं के बल से घबराकर सोम तैयार किए जा रहे स्थल पर तत्काल पहुँच गये। सभी मिलकर शत्रुओं द्वारा असहनीय तथा पवित्र होने वाले सोम के निमित्त वाद्ययंत्रों से मधुर ध्वनि करने लगे। इसके अलावा सामवेद में ऐसे मंत्र है जिसमें संगीत के साथ वीणा बजाने का उल्लेख है - *''ब्राह्मणौ वीणागाथिनौ गायतः। श्रिया वा एतद्रूपम्। यद्वीणा। श्रियमेवास्मिन् तद्वतः। यदा खलु वै पुरूषाः श्रियमश्नुते। वीणास्मै वाद्यते। तदाहुः। यदुभौ ब्राह्मणौ गायेताम्।''*[३३]

ब्राह्मण ग्रंथों, आरण्यक, उपनिषद् आदि में भी वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है। इन्हें अनेक कालखण्डों में लिखा गया। वेदों की व्याख्या करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों की रचना हुई। तत्पश्चात् आरण्यक और उपनिषदों की रचना हुई। चारों वेदों के ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् अलग-अलग है जिसमें अलग-अलग वाद्ययंत्रों के उपयोग का वर्णन किया गया है। संगीत और वाद्ययंत्रों से संबंधित सबसे अधिक वर्णन सामविधान ब्राह्मण है जो सामवेद का है। इसके अतिरिक्त तैत्तिरीय, ऐतरेय और शतपथ ब्राह्मणों में भी विभिन्न वाद्ययंत्रों का उल्लेख किया गया है। तैत्तिरीय ब्राह्मण में वीणा, दुन्दुभि, शंख और तूणव नामक वाद्ययंत्रों का वर्णन मंत्रों में किया गया है - *''महसे वीणावादम्। क्रोशाय तूणवध्यम्। आक्रन्दाय दुन्दुभ्याघातम् अवरस्पराय शंखध्मम्।''*[३४] इसके अलावा इसमें वर्णन मिलता है आनन्दाय तलवम्' अर्थात्- आनन्द के लिए तलव को। इस तरह तैत्तिरीय ब्राह्मण में तलव नामक एक अन्य वाद्ययंत्र का वर्णन मिलता है। इसके साथ ही इसमें उल्लेख है ''वीणावादं गणकं गीताय अर्थात् गीत के लिए वीणावादक गणक को।''[३५] इस प्रकार इसमें गीत गाने के साथ-साथ वीणा बजाये जाने का वर्णन है। इसी में उल्लेख किया गया है कि वीणा पर ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों गाथा गाते थे।[३६] इस तरह यहां पर ब्राह्मण और क्षत्रिय द्वारा वीणा बजाये जाने का जिक्र किया गया है।

शतपथ ब्राह्मण में एक साथ कई वीणा बजाये जाने का वर्णन मिलता है। ब्राह्मण काल में इस तरह के वीणावादकों के नायक को गणगित् कहते थे।[३७] ये मंत्र है - *''दीक्षणीयायां संस्थितायां, सायम्वाचिविसृष्टायां व्वीणागणगिन उपसमेता भवन्ति। तानध्वर्युः सम्प्रेष्यति व्वीणागणगिनऽइत्याह देवैरिमं यजमानं संगायतेति। तन्ते तथा संगायन्ति।''*[३८] अर्थात्-दीक्षा के समाप्त होने पर और सायंकाल में वाक् से विसृष्ट होने पर वीणावादकों के नायक वहाँ उपस्थित होते हैं। उनसे अध्वर्यु कहता है-''हे वीणागण के नायक, देवों के साथ-साथ इस यजमान के विषय में भी गान करो।'' तब वे उसके विषय में उसी प्रकार गान करने लग जाते हैं।

प्राचीन ग्रंथों में वर्णित अधिकांश वाद्ययंत्रों का प्रयोग झारखण्ड के जनजातीय समुदायों द्वारा किया जाता रहा है। ये प्राचीन वाद्ययंत्र जनजातियों में भिन्न-भिन्न नामों से जाने गए जैसे वीणा सितार कहलाया, दुन्दुभि टमक, आघाटि झाँझ तथा नाड़ी बाँसुरी।

रामायण में वर्णित वाद्ययंत्र

रामायण काल में भी वैदिककालीन अनेक वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता था तथा अनेक नए वाद्ययंत्र भी इस समय प्रचलित हो गए। जनजातीय वाद्ययंत्रों में इस समय विशेष रूप से वीणा, शंख, बाँसुरी (वंशी), दुन्दुभि (टमक), भेरी, मृदंग (मांदर) तथा पटह (ढोल) का उपयोग अनेक अवसरों पर किया जाता था। वाल्मीकिकृत रामायण में अनेक स्थानों पर वाद्ययंत्रों का उल्लेख किया गया है। रामायण के किष्किन्धाकाण्ड के २८ वें सर्ग में श्लोक ३६ और ३७ में वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है - *''षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवंगमोदीरित कठतालम्। आविष्कृतं मेघमृदंगनादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम।।''*[३९] रामजी किष्किन्धा वन का वर्णन करते हुए लक्ष्मणजी से कहते हैं-''हे लक्ष्मण देखो भ्रमरों का गुंजार वीणा का मधुर स्वर जैसा है। मेढक मानो अपने कण्ड से ताल के बोल-बोल रहे हैं। मेघ का

गर्जन मृदंग के नाद जैसा सुनाई दे रहा है। लगता है वन में संगीत चल रहा है।'' इस तरह इस श्लोक में वीणा, मृदंग जैसे वाद्ययंत्र का उल्लेख आया है जिससे पता चलता है कि उस समय तक वीणा के साथ-साथ मृदंग भी प्रचलित हो चुका था।

इस समय में सभी प्रकार के वाद्ययंत्रों को आतोद्य कहा गया है। आतोद्य शब्द का जिक्र सुंदरकाण्ड के १०वें सर्ग के ४६वें श्लोक में भी इस प्रकार आया है - *''आतोद्यानि विचित्राणि परिष्वज्य वरस्त्रियः। निपीड्य च कुचैः सुप्ताः कामिन्यः कामुकानिव।।''*[४०] अर्थात्-अन्य सुन्दर स्त्रियाँ तरह-तरह के आतोद्यों (बाजों) को चिपकाये हुए, अपने स्तनों से दबा कर इस प्रकार सो रही थीं जैसे कामिनियाँ कामुकों को दबा कर सो जाती हैं।

इस प्रकार आतोद्य शब्द से यह पता चलता है कि रामायण काल में तत्, अवनद्ध, सुषिर और घन इन चार प्रकार के वाद्ययंत्रों का प्रयोग होता था। इसके अतिरिक्त रावण के साम्राज्य में भी वाद्ययंत्र का प्रयोग होता है। रावण के राज्य में वाद्ययंत्र संबंधी बातों का वर्णन सुन्दरकाण्ड के २०वें सर्ग में है जिसमें रावण द्वारा सीताजी को बहुत से प्रलोभनों द्वारा यह समझाता है कि उसे अंगीकार कर ले। उन प्रलोभनों में रावण ने गीत, वाद्य, नृत्य की भी चर्चा की है। वह सीताजी से कहता है - *''महार्हाणि च पानानि शयनान्यासनानि च। गीतं नृत्यं च वाद्यं च लभ मां प्राप्य मैथिलि।।''*[४१] अर्थात्-हे मैथिली, बहुमूल्य पान-पात्र, शयन और आसन, गीत, नृत्य और वाद्य मेरे साथ होकर तुम प्राप्त करो।

इसके अतिरिक्ति किष्किन्धाकाण्ड में एक वर्णन ऐसा मिलता है जहाँ लक्ष्मण सुर्गीव को अपने कर्त्तव्य की याद दिलाने जाते हैं, वहाँ उसके महल में वीणा के साथ संगीत सुनने को मिलता है - *''प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम्। तन्त्रीगीतसमाकीर्ण समतालपदाक्षरम्।।''*[४२] अर्थात्-सुग्रीव के महल में घुसते ही लक्ष्मण ने वीणा के साथ उसके मधुर स्वरों में मिले हुए गीत सुने जिसके शब्द और ताल उन स्वरों से समायुक्त थे। इस प्रकार वाद्ययंत्र का प्रयोग उस समय दैनिक जीवन का अंग था और ये जीवन से अभिन्न थे।

रामायण के किष्किन्धा काण्ड में वंशी का वर्णन किया गया है - *''वेणुस्वरव्यञ्जिततूर्यमिश्रः प्रत्यूषकालेऽनिलसंप्रवृत्तः। संमूर्च्छितो गह्वरगोवृषाणामन्योन्यमापूरयतीव शब्दः।''*[४३] अर्थात् वंशी और वाद्य के साथ मिला हुआ प्रातःकाल में वायु के द्वारा फैलाये हुए होने के कारण व्याप्त हो जाने पर गुफाओं, गाय और बैलों के शब्द परस्पर एक-दूसरे को बढ़ा रहे है। शंख का वर्णन युद्ध काण्ड में किया गया है।

रामायण के युद्ध काण्ड में दुन्दुभि का वर्णन मिलता है। यह अधिकतर युद्ध के समय उत्तेजना के लिए, जयघोष के लिए, मंगल कार्यो के समय, राजप्रासादों और मंदिरों में सुबह और शाम बजाया जाता था। रामायण के युद्धकाण्ड के ४२वें सर्ग के ३६वें श्लोक में शंख के साथ दुन्दुभि का भी वर्णन किया गया है - *''शङ्.खदुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम्। पृथिवी चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत्।।''*[४४] इसका अर्थ है, राक्षसों और वानरों के युद्ध में शंख और दुन्दुभि के घोष और वेगवान् राक्षसों के सिंहनाद ने पृथिवी, आकाश और समुद्र को प्रतिध्वनित कर दिया। युद्धकाण्ड के ४४वें सर्ग के १२वें श्लोक में भेरी, मृदंग और पणव नामक वाद्ययंत्रों का वर्णन मिलता है - *''ततो भेरीमृदंगानां पणवानां व निः स्वनः। शङ्खनेमिस्वनोन्मिश्रः संबभूवाद्भुतोपमः।।''*[४५] अर्थात्-भेरी, मृदंग और पणव वाद्यों का भी दुन्दुभि के समान रण में योद्धाओं के उत्साहवर्धन के लिए प्रचुर प्रयोग होता था। मृदंग और पणव का गान के साथ भी प्रयोग होता था।

इसी प्रकार जब वानरों और राक्षसों के बीच युद्ध होने लगा तब इन तीनों वाद्ययंत्रों से संबंधित वर्णन किया गया है जिसका अर्थ है युद्ध काण्ड में भेरी, मृदंग और पणव का वर्णन एक श्लोक में एक साथ मिलता है 'तदन्तर भेरी, मृदंग और पणव के शब्द का शंख और रथ के पहिए के शब्द से मिलने से एक अद्भुत शब्द होने लगा।'[४६]

इस प्रकार भेरी और मुदंग का प्रयोग दुन्दुभि के समान युद्ध में योद्धाओं के उत्साहवर्धन के लिए होता था।

रामायण के सुन्दरकाण्ड में पटह का वर्णन किया गया है जो झारखण्ड के जनजातियों में ढोल के नाम से प्रचलित है। इसमें पटह का वर्णन इस रूप में किया गया है - *''पटहं चारूसर्वांगी न्यस्य शेते शुभस्तनी। चिरस्य रमणं लब्ध्वा परिष्वज्येव कामिनी।।''*[४७] अर्थात् सर्वांग सुन्दरी शुभस्तनी एक महिला पटह को लेकर इस प्रकार सोई हुई थी मानों बहुत समय बीत जाने पर मिले हुए पति का आलिंगन कर कोई कामिनी सो रही थी।

इन मंत्रों से ज्ञात होता है कि रामायणकालीन अनेक ऐसे वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था, जिसे आगे चलकर जनजातियों ने अपना लिया। रामायण काल में अयोध्या में गायक-वादक-नर्तकों का संघ रहा करता था जो प्रतिदिन राजा की सेवा में लगे रहते थे। अयोध्या के साथ-साथ सुग्रीव की किष्किन्धा और रावण की लंका नगरी में भी इन कलाकारों का संघ रहता था। अयोध्या हमेशा संगीत, नृत्य और वाद्ययंत्रों द्वारा गुंजायमान रहती थी। इस तथ्य को इस घटना से समझा जा सकता है कि राम के वनवास के अनन्तर जब दूत भरत को बुलाने जाते हैं और भरत अयोध्या के पास पहुँच कर देखते है कि जो नगरी हमेशा स्वरों और वाद्ययंत्रों की ध्वनि से गूँजती रहती थी, वहाँ आज कहीं किसी वाद्य की ध्वनि नहीं आ रही है। उनके मन में तुरंत यह शंका उठती है कि कोई अमंगल अवश्य हुआ है। अयोध्याकाण्ड में भरत के मन के भावों का वर्णन किया गया है - *''भेरीमृदंगवीणानां कोणसंघट्टितः पुनः। किमद्य शब्दो विरतः सदाडदीनगतिःपुरा।।''*[४८] अर्थात् कोण (बजाने के डण्डे) से प्रताड़ित भेरी, मृदंग और वीणा से जो पहले इस नगरी में निरंतर ध्वनि होती रहती थी वह आज बंद क्यों है?

इस प्रकार रामायण काल में अनेक वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था। इस समय अनेक ऐसे नये वाद्ययंत्रों की उत्पति हुई जिसका प्रयोग वैदिक काल में नहीं होता था। झारखण्ड के जनजातियों में प्रमुख वाद्ययंत्रों का उद्भव रामायणकाल की देन मानी जाती है। यहाँ तक की 'जोहार' शब्द भी रामायण में निषादराज द्वारा उपयोग किया गया है।

महाभारत में वर्णित वाद्ययंत्र

रामायण काल की अपेक्षा महाभारत काल में वाद्ययंत्रों की उपयोगिता कम दृष्टिगत होती है। फिर भी सामाजिक जीवन में वाद्ययंत्रों का प्रमुख स्थान था। इस काल में विभिन्न उत्सवों, युद्धों, मंगल कार्य आदि में वाद्ययंत्रों को विशेष रूप से बजाया जाता था। इस समय किसी महान व्यक्ति की यात्रा के समय भी वाद्ययंत्रों को बजाया जाता था। ये वाद्ययंत्र प्रमुख रूप से जनजातीय वाद्ययंत्रों में प्रचलित वाद्ययंत्र ही होते थे। इस संबंध में महाभारत के उद्योगपर्व में वर्णन किया गया है - *''ततः प्रयाते दाशार्हे प्रावाद्यन्तैकपुष्कराः। शंखाश्च दधिमरे तत्र वाद्यान्यन्यानि यानि च।''*[४९] इसका अर्थ है, श्रीकृष्ण के प्रयाण के समय मृदंग इत्यादि अवनद्ध वाद्य बजाए गए, शंख बजाए गए तथा अन्य विभिन्न प्रकार के वाद्य बजाए गए। इसके अलावा राजा-महाराजाओं को प्रातः नींद से जगाने के लिए भी वाद्ययंत्रों का प्रयोग किया जाता था - *''मधुरेणैव गीतेन वीणाशब्देन चैव है। प्रबोध्यमानो बुबुधे स्तुतिभिर्मंगलैस्तथा।।''*[५६] अर्थात्-मधुर गीत से, वीणा की मधुर ध्वनि से स्तुति और मंगल गान के साथ जगाये जाने पर अर्जुन जगे।

महाभारत के विभिन्न पर्वों में अनेक जनजातीय वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है। *''भेर्यश्च तूर्याणि च वारिजाश्च। वेषैः परार्ध्यैः प्रमदाजनाश्च।। बन्दिप्रवादाः पणवादिकश्च। तथैव वाद्यानि च वंशशब्दाः।। कांस्यं सतालं मधुरं च गीतम्। आदाय नार्यो नगरान्निरीयुः।।''*[५०] विराटपर्व के इन श्लोकों में भेरी, तूर्य, वारिज, पणव, कांस्य जैसे वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है। इसमें तूर्य का अर्थ तुरही, वारिज का अर्थ शंख तथा कांस्य का अर्थ काँसा का बना हुआ ताल वाद्य जिसमें झाँझ एवं मँजीरा आते है, से लिया गया है।

उद्योगपर्व में शंख और दुन्दुभि जैसे जनजातीय वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है - *''ततस्तु स्वरसम्पन्नाः*

बहवः सूतमागधाः। शंखादुन्दुभिनिघौषैः केशवं प्रत्यबोधयन्।।"[५१] महाभारत के शांतिपर्व में भी अनेक जनजातीय वाद्ययंत्रों का वर्णन किया गया है – *"शंखानथ मृदंगाश्च प्रवाद्यन्ति सहस्त्रशः। वीणापणववेणूनां स्वनश्चातिमनोरमः।।*"[५२] इसमें भी शंख, मृदंग, वीणा, पणव, वेणु (बाँसुरी) का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार महाभारत काल में चार प्रकार के वाद्ययंत्रों का उपयोग किया जाता था और इसे बजाने के लिए अत्यंत कुशल और सुशिक्षित कलाकार भी विद्यमान थे।

अतः वैदिक ग्रंथों और महाकाव्यों में अनेक वाद्ययंत्रों का उल्लेख किया गया है। इन वाद्ययंत्रों में अधिकांश वैसे वाद्ययंत्र है जिनका उपयोग झारखण्ड के जनजातीय समाज में प्रारंभ से ही किया जाता रहा है। इस तरह हम कह सकते है कि झारखण्ड के जनजातीय समाज में उपयोग होने वाले वाद्ययंत्रों की प्राचीनता वैदिक काल और संभवतः उससे पहले से ही रही है।

संदर्भ सूची

१. गिरीधारी राम गौंझू, *झारखण्ड का लोकसंगीत,* झारखण्ड झरोखा, राँची, २०१५, पृ. ५

२. श्यामसुन्दर घोष (सं०), *नटराज शिव,* विभोर प्रकाशन, इलाहाबाद, २०१४, पृ. २५

३. लालमणि मिश्र, *भारतीय संगीत वाद्य,* भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, २००२, पृ. ३६

४. ठाकुर जयदेव सिंह, *भारतीय संगीत का इतिहास,* विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, २०१६, पृ. २७

५. वही

६. *ऋग्वेद,* श्रीराम शर्मा आचार्य (सं०), युग निर्माण योजना, मथुरा, २००५, १.८५.१०

७. *ऋग्वेद,* ८.२०.८

८. *ऋग्वेद,* ६.६७.८

९. *ऋग्वेद,* ६.५०.१

१०. गुरमीत सिंह मनकान, *उत्तर भारतीय संगीत,* महामाया पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, २००६, पृ. ४९

११. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ. २९

१२. *अथर्ववेद,* श्रीराम शर्मा आचार्य (सं०), युग निर्माण योजना, मथुरा, २००५, १०.२.१७

१३. रश्मि गुप्ता, *भारतीय संगीत एवं अनुनाद,* अनुभव पब्लिशिंग हाऊस, इलाहाबाद, २०१३, पृ. ६५

१४. *ऋग्वेद,* २.४३.३

१५. *अथर्ववेद,* ४.३७.५

१६. *ऋग्वेद,* १.२८.५

१७. *ऋग्वेद,* ६.४७.२९

१८. *ऋग्वेद,* ६.४७.३०

१९. *ऋग्वेद,* ६.४७.३१

२०. *अथर्ववेद,* ५.२०.४

२१. *अथर्ववेद,* ५.२०.५

२२. *अथर्ववेद,* ५.२०.६

२३.लालमणि मिश्र, पूर्वोद्धृत, पृ. ८४

२४. वही

२५. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ. ३१

२६. *ऋग्वेद,* १०.१४६.२

२७. *अथर्ववेद,* ४.३७.५

२८. *ऋग्वेद,* १०.१३५.७

२९. *यजुर्वेद,* श्रीराम शर्मा आचार्य (सं०), युग निर्माण योजना, मथुरा, २०१८, ३०.१९

३०. *यजुर्वेद,* ३०.२०

३१.ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ. ३४

३२. *सामवेद,* श्रीराम शर्मा आचार्य (सं०), युग निर्माण योजना, मथुरा, २०१५, ८.१.१२

३३. *सामवेद,* ८.१.२१

३४.ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ. ७७

३५.वही

३६. वही

३७. वही

३८.वही

३९. *रामायण,* परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती (सं०), विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, ४.२५

४०. *रामायण,* ५.१०.४६

४१. *रामायण,* ५.२०.१०

४२. *रामायण,* ४.३३.२१

४३. *रामायण,* ४.३०.५०

४४. *रामायण,* ६.४२.३६

४५. *रामायण,* ६.४४.१२

४६. ठाकुर जयदेव सिंह, पूर्वोद्धृत, पृ. १७३

४७. *रामायण,* ५.१०.३६

४८. *रामायण,* २.७१.२६

४९. *महाभारतम्,* परमहंस स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती (सं०), विजयकुमार गोविन्दराम हासानंद, दिल्ली, २०११, १.२१८.१४

५०. *महाभारत,* ४.७०.३३-३४

५१. *महाभारत,* ५.६४.४

५२. *महाभारत,* १२.४३.४-५